।।ॐ श्री परमात्मने नमः।।

॥श्री गणेशाय नमः॥

पंचतंत्र कथा संग्रह

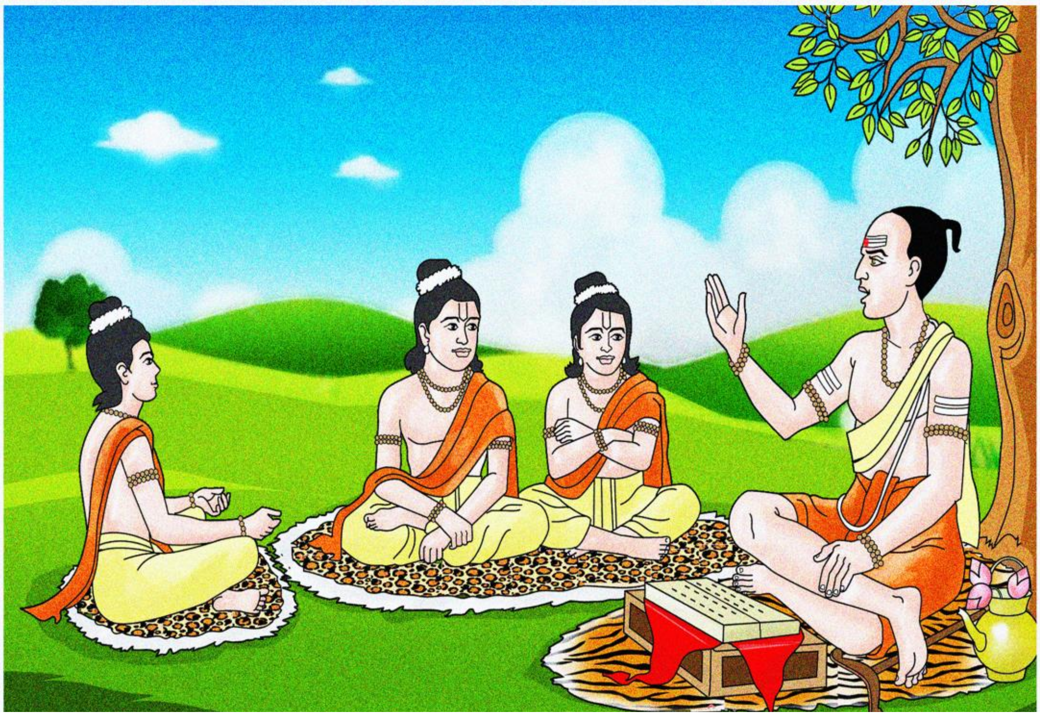

संकलनकर्ता:

मनीष त्यागी

विषय-सूची

सक्षिप्त परिचय 5

मित्रभेद 8

सियार और ढोल 8

व्यापारी का पतन और उदय 10

मूर्ख साधू और ठग 12

लड़ती भेड़ें और सियार 13

दुष्ट सर्प और कौवे 14

बगुला भगत और केकड़ा 16

चतुर खरगोश और शेर 19

खटमल और बेचारी जूं 22

नीले सियार की कहानी 23

बन्दर और लकड़ी का खूंटा 26

शेर, ऊंट, सियार और कौवा 28

चिड़िया का जोडा़ और समुद्र का अभिमान 30

मूर्ख बातूनी कछुआ 33

तीन मछलियां 34

गौरैया और हाथी 37

सिंह और सियार 38

चिड़िया और बन्दर 40

गौरैया और बन्दर 41

मित्रद्रोह का फल- 42

मूर्ख बगुला और नेवला 43

मूर्ख मित्र 44

मित्र सम्प्राप्ति..46
साधु और चूहा..46
गजराज और मूषकराज की कथा...48
लालच का फल बुरा – सूअर, शिकारी और गीदड़ की कथा.................................51
जैसे को तैसा...53
अभागा बुनकर...55
संधिविग्रह-..60
कौवे और उल्लू के बैर की कथा 60
हाथी और चतुर खरगोश..61
धूर्त बिल्ली का न्याय...64
बकरा, ब्राह्मण और तीन ठग 65
कबूतर का जोड़ा और शिकारी..66
ब्राह्मण और सर्प की कथा...68
बूढा आदमी, युवा पत्नी और चोर 70
ब्राह्मण, चोर, और दानव की कथा..71
दो सांपों की कथा...73
चुहिया का स्वयंवर..74
सुनहरा गोबर 76
बोलने वाली गुफा 77
कौवे और उल्लू का युद्ध 80
लब्धप्रणाशा...90
बंदर का कलेजा और मगरमच्छ 90
नागदेव और मेढकों का राजा..95
शेर और मूर्ख गधा..98
जिसका काम उसी को साझे कुम्हार की कथा – 101
जिसका काम उसी को साझे गीदड़ की कथा - 103
वाचाल गधा और धोबी..105

घमंडी का सिर नीचा 106
चतुर सियार 107
कुत्ता जो विदेश गया 109
धोखे का फल बुरा 110
राजा का मजाक 112
अपरीक्षितकारक 113
बेवकूफ नाई और लालची भिक्षु 113
ब्राह्मणी और नेवला 116
मस्तक पर चक्र 118
जब शेर जी उठामूर्ख वैज्ञानिक : 121
चार मूर्ख ब्राह्मणों 122
दो मछलियों और एक मेंढक की कहानी 124
संगीतप्रिय गधा 126
ब्राह्मण का सपना 129
दो सिर वाला जुलाहा 130
वानरराज का बदला 132
राक्षस का भय 135
दो सिर वाला पक्षी 137

सक्षिप्त परिचय

संस्कृत नीतिकथाओं में पंचतंत्र का पहला स्थान माना जाता है। इस ग्रंथ के रचयिता पंडित विष्णु शर्मा हैं। विश्व की 50 से भी अधिक भाषाओ में इनका अनुवाद प्रकाशित हो चूका है। इतनी भाषाओ में इन कहानियों का अनुवाद प्रकाशित होना ही इनकी लोकप्रियता का परिचायक है।

पंचतंत्र की कहानियों की रचना का इतिहास भी बड़ा ही रोचक है। लगभग 2000 साल पहले पूर्व भारत के दक्षिणी हिस्से में महिलारोग्य नामक नगर में राजा अमरशक्ति का शासन था। उसके तीन पुत्र बहुशक्ति, उग्रशक्ति और अनंतशक्ति थे। राजा अमरशक्ति जितने उदार प्रशासक और कुशल नीतिज्ञ थे, उनके पुत्र उतने ही मुर्ख और अहंकारी थे

राजा ने उन्हें व्यवहारिक शिक्षा देने की बहुत कोशिश की, परन्तु किसी भी प्रकार से बात नहीं बनी। हारकर एक दिन राजा ने अपने मंत्रियो से मंत्रणा की। राजा अमरशक्ति के मंत्रिमंडल में कई कुशल, दूरदर्शी और योग्य मंत्री थे, उन्हीं में से एक मंत्री सुमति ने राजा को परामर्श दिया की पंडित विष्णु शर्मा सर्वशास्त्रों के ज्ञाता और एक कुशल ब्राह्मण हैं, यदि राजकुमारों को शिक्षा देने और व्यवहारिक रूप से प्रशिक्षित करने का उत्तरदायित्व पंडित विष्णु शर्मा को सौंपा जाए तो उचित होगा, वे अल्प समय में ही राजकुमारों को शिक्षित करने की समर्थ रखते हैं।

राजा अमरशक्ति ने पंडित विष्णु शर्मा से अनुरोध किया और पारितोषिक के रूप में उन्हें सौ गाँव देने का वचन दिया। पंडित विष्णु शर्मा ने पारितोषिक को तो अस्वीकार कर दिया, परन्तु राजकुमारों को शिक्षित करने के कार्य को एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया।| इस स्वीकृति के साथ ही उन्होंने घोषणा की, की में यह असंभव कार्य मात्र छ:महीनो में पूर्ण करूँगा, यदि में ऐसा न कर सका तो महाराज मुझे मृत्युदंड दे सकते हैं। पंडित विष्णु शर्मा की यह भीष्म प्रतिज्ञा सुनकर महाराज अमरशक्ति

निश्चिन्त होकर अपने शासन-कार्य में व्यस्त हो गए और पंडित विष्णु शर्मा तीनो राजकुमारों को अपने आश्रम में ले आए।

पंडित विष्णु शर्मा ने राजकुमारों को विविध प्रकार की नीतिशास्त्र से सम्बंधित कथाए सुनाई। उन्होंने इन कथाओं में पात्रों के रूप में पशु-पक्षिओ का वर्णन किया और अपने विचारों को उनके मुख से व्यक्त किया। पशु-पक्षिओ को ही आधार बनाकर उन्होंने राजकुमारों को उचित-अनुचित आदि का ज्ञान दिया और इसके साथ ही राजकुमारों को व्यवहारिक रूप से प्रशिक्षित करना आरंभ किया। राजकुमारों की शिक्षा समाप्त होने के पश्चात पंडित विष्णु शर्मा ने इन कहानियों पंचतंत्र कहानी संग्रह के रूप में संकलित किया।

उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि जब इस ग्रंथ की रचना पूरी हुई, तब उनकी उम्र ८० वर्ष के करीब थी। पंचतंत्र को पाँच तंत्रों (भागों) में बाँटा गया है :-

१.	मित्रभेद	मित्रों में मनमुटाव एवं अलगाव
२.	मित्रलाभ या मित्रसंप्राप्ति	मित्र प्राप्ति तथा उसके लाभ
३.	संधि-विग्रह/काकोलूकियम	कौवे एवं उल्लुओं की कथा
४.	लब्ध प्रणाश	मृत्यु अथवा विनाश का समय आने पर आ बने तो क्या करें ?
५.	अपरीक्षित कारक	जिसको परखा नहीं गया हो उसे करने से पहले सावधान रहें; जल्दबाजी में क़दम न उठायें

मनोविज्ञान, व्यवहारिकता तथा राजकाज के सिद्धांतों से परिचित कराती ये कहानियाँ सभी विषयों को बड़े ही रोचक तरीके से सामने रखती है तथा साथ ही साथ एक सीख देने की कोशिश करती है।

आशा यह संकलन बच्चों को शिक्षाप्रद कहानी सुनाने तथा तथा साथ साथ उन्हें भविष्य के लिए तैयार करने में सहायक होगा।

जय हिन्द, जय हिन्द की सेना !

शुभकामनाओं सहित :

मनीष त्यागी

मित्रभेद

सियार और ढोल

एक बार एक जंगल के निकट दो राजाओं के बीच घोर युद्ध हुआ। एक जीता दूसरा हारा। सेनाएं अपने नगरों को लौट गई। बस, सेना का एक ढोल पीछे रह गया। उस ढोल को बजा-बजाकर सेना के साथ गए भांड व चारण रात को वीरता की कहानियां सुनाते थे।

युद्ध के बाद एक दिन आंधी आई। आंधी के ज़ोर में वह ढोल लुढकता-पुढकता एक सूखे पेड के पास जाकर टिक गया। उस पेड की सूखी टहनियां ढोल से इस तरह से सट गई थी कि तेज हवा चलते ही ढोल पर टकरा जाती थी और ढमाढम ढमाढम की गुंजायमान आवाज़ होती।

एक सियार उस क्षेत्र में घूमता था। उसने ढोल की आवाज़ सुनी। वह बडा भयभीत हुआ। ऐसी अजीब आवाज़ बोलते पहले उसने किसी जानवर को नहीं सुना था। वह सोचने लगा कि यह कैसा जानवर हैं, जो ऐसी जोरदार बोली बोलता हैं 'ढमाढम'। सियार छिपकर ढोल को देखता रहता, यह जानने के लिए कि यह जीव उडने वाला हैं या चार टांगो पर दौडने वाला।

एक दिन सियार झाडी के पीछे छुप कर ढोल पर नजर रखे था। तभी पेड से नीचे उतरती हुई एक गिलहरी कूदकर ढोल पर उतरी। हलकी-सी ढम की आवाज़ भी हुई। गिलहरी ढोल पर बैठी दाना कुतरती रही।

सियार बडबडाया 'ओह! तो यह कोई हिंसक जीव नहीं हैं। मुझे भी डरना नहीं चाहिए।'

सियार फूंक-फूंककर क़दम रखता ढोल के निकट गया। उसे सूंघा। ढोल का उसे न कहीं सिर नजर आया और न पैर। तभी हवा के झुंके से

टहनियां ढोल से टकराईं। ढम की आवाज़ हुई और सियार उछलकर पीछे जा गिरा।

'अब समझ आया।' सियार उढने की कोशिश करता हुआ बोला 'यह तो बाहर का खोल हैं। जीव इस खोल के अंदर हैं। आवाज़ बता रही हैं कि जो कोई जीव इस खोल के भीतर रहता हैं, वह मोटा-ताजा होना चाहिए। चर्बी से भरा शरीर। तभी ये ढम=ढम की जोरदार बोली बोलता हैं।
'
अपनी मांद में घुसते ही सियार बोला 'ओ सियारी! दावत खाने के लिए तैयार हो जा। एक मोटे-ताजे शिकार का पता लगाकर आया हूं।'

सियारी पूछने लगी 'तुम उसे मारकर क्यों नहीं लाए?'

सियार ने उसे झिडकी दी 'क्योंकि मैं तेरी तरह मूर्ख नहीं हूं। वह एक खोल के भीतर छिपा बैठा हैं। खोल ऐसा हैं कि उसमें दो तरफ सूखी चमडी के दरवाज़े हैं।मैं एक तरफ से हाथ डाल उसे पकडने की कोशिश करता तो वह दूसरे दरवाज़े से न भाग जाता?'

चांद निकलने पर दोनों ढोल की ओर गए। जब वह् निकट पहुंच ही रहे थे कि फिर हवा से टहनियां ढोल पर टकराईं और ढम-ढम की आवाज़ निकली। सियार सियारी के कान में बोला 'सुनी उसकी आवाज? जरा सोच जिसकी आवाज़ ऐसी गहरी हैं, वह खुद कितना मोटा ताजा होगा।'

दोनों ढोल को सीधा कर उसके दोनों ओर बैठे और लगे दांतो से ढोल के दोनों चमडी वाले भाग के किनारे फाडने। जैसे ही चमडियां कटने लगी, सियार बोला 'होशियार रहना। एक साथ हाथ अंदर डाल शिकार को दबोचना हैं।' दोनों ने 'हूं' की आवाज़ के साथ हाथ ढोल के भीतर डाले और अंदर टटोलने लगे। अदंर कुछ नहीं था। एक दूसरे के हाथ ही पकड में आए। दोंनो चिल्लाए 'हैं! यहां तो कुछ नहीं हैं।' और वे माथा पीटकर रह गए।

व्यापारी का पतन और उदय

वर्धमान नामक एक शहर में एक बहुत ही कुशल व्यापारी रहता था। राजा को उसकी क्षमताओं के बारे में पता था, और इसलिए उसने उसे राज्य का प्रशासक बना दिया। अपने कुशल तरीकों से उसने आम आदमी को भी खुश रखा था, और साथ ही दूसरी तरफ राजा को भी बहुत प्रभावित किया था।

कुछ दिनों बाद व्यापारी ने अपनी लड़की का विवाह तय किया। इस उपलक्ष्य में उसने एक बहुत बड़े भोज का आयोजन किया। इस भोज में उसने राज परिवार से लेकर प्रजा, सभी को आमंत्रित किया। भोज के दौरान उसने सभी को बहुत सम्मान दिया और सभी मेहमानों को आभूषण और उपहार दिए।

राजघराने का एक सेवक, जो महल में झाड़ू लगाता था, वह भी इस भोज में शामिल हुआ, मगर गलती से वह एक ऐसी कुर्सी पर बैठ गया जो राज परिवार के लिए नियत थी। यह देखकर व्यापारी आग-बबूला हो गया और उसने सेवक की गर्दन पकड़ कर उसे भोज से धक्के दे कर बाहर निकलवा दिया।

सेवक को बड़ी शर्मिंदगी महसूस हुई और उसने व्यापारी को सबक सिखाने की सोची।

कुछ दिनों बाद, एक बार सेवक राजा के कक्ष में झाड़ू लगा रहा था। उसने राजा को अर्धनिद्रा में देख कर बड़बड़ाना शुरू किया: “इस व्यापारी की यह मजाल की वह रानी के साथ दुर्व्यवहार करे। ”
यह सुन कर रहा अपने बिस्तर से कूद पड़ा और उसने सेवक से पूछा, क्या यह वाकई में सच है? क्या तुमने व्यापारी को दुर्व्यवहार करते देखा है?

सेवक ने तुरंत राजा के चरण पकडे और बोला: मुझे माफ़ कर दीजिये, मैं पूरी रात जुआ खेलता रहा और सो न सका। इसीलिए नींद में कुछ भी बड़बड़ा रहा हूँ।

राजा ने कुछ बोला तो नहीं, पर शक का बीज तो बोया जा चुका था। उसी दिन से राजा ने

व्यापारी के महल में निरंकुश घूमने पर पाबंदी लगा दी और उसके अधिकार कम कर दिए।

अगले दिन जब व्यापारी महल में आया तो उसे संतरियों ने रोक दिया। यह देख कर व्यापारी बहुत आश्चर्य -चकित हुआ। तभी वहीँ खड़े सेवक ने मज़े लेते हुए कहा, ऐ संतरियों, जानते नहीं ये कौन हैं? ये बहुत प्रभावशाली व्यक्ति हैं और तुम्हें बाहर फिंकवा सकते हैं, जैसा इन्होने मेरे साथ अपने भोज में किया था। तनिक सावधान रहना। यह सुनते ही व्यापारी को सारा माजरा समझ में आ गया।

कुछ दिनों के बाद उसने उस सेवक को अपने घर बुलाया, उसकी खूब आव-भगत की और उपहार भी दिए। फिर उसने बड़ी विनम्रता से भोज वाले दिन के लिए क्षमा मांगते हुआ कहा की उसने जो भी किया गलत किया।

सेवक खुश हो चुका था। उसने कहा की न केवल आपने मुझसे माफ़ी मांगी, पर मेरी इतनी आप-भगत भी की। आप चिंता न करें, मैं राजा से आपका खोया हुआ सम्मान वापस दिलाउंगा।
अगले दिन उसने राजा के कक्ष में झाड़ू लगाते हुआ जब राजा को अर्ध-निद्रा में देखा तो फिर बड़बड़ाने लगा "हे भगवान, हमारा राजा तो ऐसा मूर्ख है की वह गुसलखाने में खीरे खाता है"

यह सुनकर राजा क्रोध से भर उठा और बोला – मूर्ख सेवक, तुम्हारी ऐसी बोलने की हिम्मत कैसे हुई? तुम अगर मेरे कक्ष के सेवक न होते तो तुम्हें

नौकरी से निकाल देता। सेवक ने दुबारा चरणों में गिर कर राजा से माफ़ी मांगी और दुबारा कभी न बड़बड़ाने की कसम खाई।

उधर राजा ने सोचा कि जब यह मेरे बारे में ऐसे गलत बोल सकता है तोह अवश्य ही इसने व्यापारी के बारे में भी गलत हो बोला होगा, जिसकी वजह से मैंने उसे बेकार में दंड दिया।

अगले दिन ही राजा ने व्यापारी को महल में उसकी खोयी प्रतिष्ठा वापस दिला दी।

मूर्ख साधू और ठग

एक बार की बात है, किसी गाँव के मंदिर में देव शर्मा नाम का एक प्रतिष्ठित साधू रहता था। गाँव में सभी उसका सम्मान करते थे। उसे अपने भक्तों से दान में तरह तरह के वस्त्र, उपहार, खाद्य सामग्री और पैसे मिलते थे। उन वस्त्रों को बेचकर साधू ने काफी धन जमा कर लिया था।

साधू कभी किसी पर विश्वास नहीं करता था और हमेशा अपने धन की सुरक्षा के लिए चिंतित रहता था। वह अपने धन को एक पोटली में रखता था और उसे हमेशा अपने साथ लेकर ही चलता था।

उसी गाँव में एक ठग रहता था। बहुत दिनों से उसकी निगाह साधू के धन पर थी। ठग हमेशा साधू का पीछा किया करता था, लेकिन साधू उस गठरी को कभी अपने से अलग नहीं करता था।

आखिरकार, उस ठग ने एक छात्र का वेश धारण किया और उस साधू के पास गया। उसने साधू से मिन्नत की कि वह उसे अपना शिष्य बना ले क्योंकि वह ज्ञान प्राप्त करना चाहता था। साधू तैयार हो गया और इस तरह से वह ठग साधू के साथ ही मंदिर में रहने लगा।

ठग मंदिर की साफ सफाई से लेकर अन्य सारे कम करता था और ठग ने साधू की भी खूब सेवा की और जल्दी ही उसका विश्वासपात्र बन गया।

एक दिन साधू को पास के गाँव में एक अनुष्ठान के लिए आमंत्रित किया गया, साधू ने वह आमंत्रण स्वीकार किया और निश्चित दिन साधू अपने शिष्य के साथ अनुष्ठान में भाग लेने के लिए निकल पड़ा।

रास्ते में एक नदी पड़ी और साधू ने स्नान करने की इक्षा व्यक्त की। उसने पैसों की गठरी को एक कम्बल के भीतर रखा और उसे नदी के किनारे रख दिया। उसने ठग से सामान की रखवाली करने को कहा और खुद नहाने चला गया। ठग को तो कब से इसी पल का इंतज़ार था। जैसे ही साधू नदी में डुबकी लगाने गया, वह रुपयों की गठरी लेकर चम्पत हो गया।

लड़ती भेड़ें और सियार

एक दिन एक सियार किसी गाँव से गुजर रहा था। उसने गाँव के बाजार के पास लोगों की एक भीड़ देखी। कौतूहलवश वह सियार भीड़ के पास यह देखने गया कि क्या हो रहा है। सियार ने वहां देखा कि दो बकरे आपस में लड़ाई कर रहे थे। दोनों ही बकरे काफी तगड़े थे इसलिए उनमे जबरदस्त लड़ाई हो रही थी। सभी लोग जोर-जोर से चिल्ला रहे थे और तालियां बजा रहे थे। दोनों बकरे बुरी तरह से लहूलुहान हो चुके थे और सड़क पर भी खून बह रहा था।

जब सियार ने इतना सारा ताजा खून देखा तो अपने आप को रोक नहीं पाया। वह तो बस उस ताजे खून का स्वाद लेना चाहता था और बकरों पर अपना हाथ साफ़ करना चाहता था। सियार ने आव देखा न ताव और बकरों पर टूट पड़ा। लेकिन दोनों बकरे बहुत ताकतवर थे। उन्होंने सियार की जमकर धुनाई कर दी जिससे सियार वहीँ पर ढेर हो गया।

दुष्ट सर्प और कौवे

एक जंगल में एक बहुत पुराना बरगद का पेड था। उस पेड पर घोंसला बनाकर एक कौआ-कव्वी का जोडा रहता था। उसी पेड के खोखले तने में कहीं से आकर एक दुष्ट सर्प रहने लगा। हर वर्ष मौसम आने पर कव्वी घोंसले में अंडे देती और दुष्ट सर्प मौक़ा पाकर उनके घोंसले में जाकर अंडे खा जाता। एक बार जब कौआ व कव्वी जल्दी भोजन पाकर शीघ्र ही लौट आए तो उन्होंने उस दुष्ट सर्प को अपने घोंसले में रखे अंडों पर झपटते देखा।

अंडे खाकर सर्प चला गया कौए ने कव्वी को ढाडस बंधाया 'प्रिये, हिम्मत रखो। अब हमें शत्रु का पता चल गया हैं। कुछ उपाय भी सोच लेंगे।'

कौए ने काफ़ी सोचा विचारा और पहले वाले घोंसले को छोड उससे काफ़ी ऊपर टहनी पर घोंसला बनाया और कव्वी से कहा 'यहां हमारे अंडे सुरक्षित रहेंगे। हमारा घोंसला पेड की चोटी के किनारे निकट हैं और ऊपर आसमान में चील मंडराती रहती हैं। चील सांप की बैरी हैं। दुष्ट सर्प यहां तक आने का साहस नहीं कर पाएगा।'

कौवे की बात मानकर कव्वी ने नए घोंसले में अंडे सुरक्षित रहे और उनमें से बच्चे भी निकल आए।

उधर सर्प उनका घोंसला ख़ाली देखकर यह समझा कि कि उसके डर से कौआ कव्वी शायद वहां से चले गए हैं पर दुष्ट सर्प टोह लेता रहता था। उसने देखा कि कौआ-कव्वी उसी पेड से उडते हैं और लौटते भी वहीं हैं। उसे यह समझते देर नहीं लगी कि उन्होंने नया घोंसला उसी पेड पर ऊपर बना रखा हैं। एक दिन सर्प खोह से निकला और उसने कौओं का नया घोंसला खोज लिया।

घोंसले में कौआ दंपती के तीन नवजात शिशु थे। दुष्ट सर्प उन्हें एक-एक करके घपाघप निगल गया और अपने खोह में लौटकर डकारें लेने लगा।

कौआ व कव्वी लौटे तो घोंसला ख़ाली पाकर सन्न रह गए। घोंसले में हुई टूट-फूट व नन्हें कौओं के कोमल पंख बिखरे देखकर वह सारा माजरा समझ गए। कव्वी की छाती तो दुख से फटने लगी। कव्वी बिलख उठी 'तो क्या हर वर्ष मेरे बच्चे सांप का भोजन बनते रहेंगे?'

कौआ बोला 'नहीं! यह माना कि हमारे सामने विकट समस्या हैं पर यहां से भागना ही उसका हल नहीं हैं। विपत्ति के समय ही मित्र काम आते हैं। हमें लोमडी मित्र से सलाह लेनी चाहिए।'

दोनों तुरंत ही लोमडी के पास गए। लोमडी ने अपने मित्रों की दुख भरी कहानी सुनी। उसने कौआ तथा कव्वी के आंसू पोंछे। लोमडी ने काफ़ी सोचने के बाद कहा 'मित्रो! तुम्हें वह पेड छोडकर जाने की जरुरत नहीं हैं। मेरे दिमाग में एक तरकीब आ रही हैं, जिससे उस दुष्टसर्प से छुटकारा पाया जा सकता हैं।'

लोमडी ने अपने चतुर दिमाग में आई तरकीब बताई। लोमडी की तरकीब सुनकर कौआ-कव्वी खुशी से उछल पडें। उन्होंने लोमडी को धन्यवाद दिया और अपने घर लौट आए।

अगले ही दिन योजना अमल में लानी थी। उसी वन में बहुत बडा सरोवर था। उसमें कमल और नरगिस के फूल खिले रहते थे। हर मंगलवार को उस प्रदेश की राजकुमारी अपनी सहेलियों के साथ वहां जल-क्रीडा करने आती थी। उनके साथ अंगरक्षक तथा सैनिक भी आते थे।

इस बार राजकुमारी आई और सरोवर में स्नान करने जल में उतरी तो योजना के अनुसार कौआ उडता हुआ वहां आया। उसने सरोवर तट पर राजकुमारी तथा उसकी सहेलियों द्वारा उतारकर रखे गए कपडों व

आभूषणों पर नजर डाली। कपडे से सबसे ऊपर था राजकुमारी का प्रिय हीरे व मोतियों का विलक्षण हार।

कौए ने राजकुमारी तथा सहेलियों का ध्यान अपनी और आकर्षित करने के लिए ‘कांव-कांव’ का शोर मचाया। जब सबकी नजर उसकी ओर घूमी तो कौआ राजकुमारी का हार चोंच में दबाकर ऊपर उड गया। सभी सहेलियां चीखी 'देखो, देखो! वह राजकुमारी का हार उठाकर ले जा रहा हैं।'

सैनिकों ने ऊपर देखा तो सचमुच एक कौआ हार लेकर धीरे-धीरे उडता जा रहा था। सैनिक उसी दिशा में दौडने लगे। कौआ सैनिकों को अपने पीचे लगाकर धीरे-धीरे उडता हुआ उसी पेड की ओर ले आया। जब सैनिक कुच ही दूर रह गए तो कौए ने राजकुमारी का हार इस प्रकार गिराया कि वह सांप वाले खोह के भीतर जा गिरा।

सैनिक दौडकर खोह के पास पहुंचे। उनके सरदार ने खोह के भीतर झांका। उसने वहां हार और उसके पास में ही एक काले सर्प को कुडंली मारे देखा। वह चिल्लाया 'पीछे हटो! अंदर एक नाग हैं।' सरदार ने खोह के भीतर भाला मारा। सर्प घायल हुआ और फुफकारता हुआ बाहर निकला। जैसे ही वह बाहर आया, सैनिकों ने भालों से उसके टुकडे-टुकडे कर डाले।

बगुला भगत और केकड़ा

एक वन प्रदेश में एक बहुत बडा तालाब था। हर प्रकार के जीवों के लिए उसमें भोजन सामग्री होने के कारण वहां नाना प्रकार के जीव, पक्षी, मछलियां, कछुए और केकडे आदि वास करते थे। पास में ही बगुला रहता था, जिसे परिश्रम करना बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था। उसकी आंखें भी कुछ कमज़ोर थीं। मछलियां पकडने के लिए तो मेहनत करनी पडती हैं, जो उसे खलती थी। इसलिए आलस्य के मारे वह प्रायः भूखा ही रहता।

एक टांग पर खडा यही सोचता रहता कि क्या उपाय किया जाए कि बिना हाथ-पैर हिलाए रोज भोजन मिले। एक दिन उसे एक उपाय सूझा तो वह उसे आजमाने बैठ गया।

बगुला तालाब के किनारे खडा हो गया और लगा आंखों से आंसू बहाने। एक केकडे ने उसे आंसू बहाते देखा तो वह उसके निकट आया और पूछने लगा 'मामा, क्या बात है भोजन के लिए मछलियों का शिकार करने की बजाय खडे आंसू बहा रहे हो?'

बगुले ने ज़ोर की हिचकी ली और भर्राए गले से बोला 'बेटे, बहुत कर लिया मछलियों का शिकार। अब मैं यह पाप कार्य और नहीं करुंगा। मेरी आत्मा जाग उठी हैं। इसलिए मैं निकट आई मछलियों को भी नहीं पकड रहा हूं। तुम तो देख ही रहे हो।'

केकडा बोला 'मामा, शिकार नहीं करोगे, कुछ खाओगे नहीं तो मर नहीं जाओगे?'

बगुले ने एक और हिचकी ली 'ऐसे जीवन का नष्ट होना ही अच्छा है बेटे, वैसे भी हम सबको जल्दी मरना ही है। मुझे ज्ञात हुआ है कि शीघ्र ही यहां बारह वर्ष लंबा सूखा पडेगा।'

बगुले ने केकडे को बताया कि यह बात उसे एक त्रिकालदर्शी महात्मा ने बताई हैं, जिसकी भविष्यवाणी कभी ग़लत नहीं होती। केकडे ने जाकर सबको बताया कि कैसे बगुले ने बलिदान व भक्ति का मार्ग अपना लिया हैं और सूखा पडने वाला हैं।

उस तालाब के सारे जीव मछलियां, कछुए, केकडे, बत्तखें व सारस आदि दौडे-दौडे बगुले के पास आए और बोले 'भगत मामा, अब तुम ही हमें कोई बचाव का रास्ता बताओ। अपनी अक्ल लडाओ तुम तो महाज्ञानी बन ही गए हो।'

बगुले ने कुछ सोचकर बताया कि वहां से कुछ कोस दूर एक जलाशय हैं जिसमें पहाडी झरना बहकर गिरता हैं। वह कभी नहीं सूखता। यदि जलाशय के सब जीव वहां चले जाएं तो बचाव हो सकता हैं। अब समस्या यह थी कि वहां तक जाया कैसे जाएं? बगुले भगत ने यह समस्या भी सुलझा दी 'मैं तुम्हें एक-एक करके अपनी पीठ पर बिठाकर वहां तक पहुंचाऊंगा क्योंकि अब मेरा सारा शेष जीवन दूसरों की सेवा करने में गुजरेगा।'

सभी जीवों ने गद्-गद् होकर ‘बगुला भगतजी की जै’ के नारे लगाए।

अब बगुला भगत के पौ-बारह हो गई। वह रोज एक जीव को अपनी पीठ पर बिठाकर ले जाता और कुछ दूर ले जाकर एक चट्टान के पास जाकर उसे उस पर पटककर मार डालता और खा जाता। कभी मूड हुआ तो भगतजी दो फेरे भी लगाते और दो जीवों को चट कर जाते तालाब में जानवरों की संख्या घटने लगी। चट्टान के पास मरे जीवों की हड्डियों का ढेर बढने लगा और भगतजी की सेहत बनने लगी। खा-खाकर वह खूब मोटे हो गए। मुख पर लाली आ गई और पंख चर्बी के तेज से चमकने लगे। उन्हें देखकर दूसरे जीव कहते 'देखो, दूसरों की सेवा का फल और पुण्य भगतजी के शरीर को लग रहा है।'

बगुला भगत मन ही मन खूब हंसता। वह सोचता कि देखो दुनिया में कैसे-कैसे मूर्ख जीव भरे पडे हैं, जो सबका विश्वास कर लेते हैं। ऐसे मूर्खों की दुनिया में थोडी चालाकी से काम लिया जाए तो मजे ही मजे हैं। बिना हाथ-पैर हिलाए खूब दावत उडाई जा सकती है संसार से मूर्ख प्राणी कम करने का मौक़ा मिलता है बैठे-बिठाए पेट भरने का जुगाड हो जाए तो सोचने का बहुत समय मिल जाता हैं।

बहुत दिन यही क्रम चला। एक दिन केकडे ने बगुले से कहा 'मामा, तुमने इतने सारे जानवर यहां से वहां पहुंचा दिए, लेकिन मेरी बारी अभी तक नहीं आई।'

भगतजी बोले 'बेटा, आज तेरा ही नंबर लगाते हैं, आजा मेरी पीठ पर बैठ जा।'

केकडा खुश होकर बगुले की पीठ पर बैठ गया। जब वह चट्टान के निकट पहुंचा तो वहां हड्डियों का पहाड देखकर केकडे का माथा ठनका। वह हकलाया 'यह हड्डियों का ढेर कैसा है? वह जलाशय कितनी दूर है, मामा?'

बगुला भगत ठां-ठां करके खूब हंसा और बोला 'मूर्ख, वहां कोई जलाशय नहीं है। मैं एक- एक को पीठ पर बिठाकर यहां लाकर खाता रहता हूं। आज तू मरेगा।'

केकडा सारी बात समझ गया। वह सिहर उठा परन्तु उसने हिम्मत न हारी और तुरंत अपने जंबूर जैसे पंजों को आगे बढाकर उनसे दुष्ट बगुले की गर्दन दबा दी और तब तक दबाए रखी, जब तक उसके प्राण पखेरु न उड गए।

फिर केकडा बगुले भगत का कटा सिर लेकर तालाब पर लौटा और सारे जीवों को सच्चाई बता दी कि कैसे दुष्ट बगुला भगत उन्हें धोखा देता रहा।

चतुर खरगोश और शेर

किसी घने वन में एक बहुत बड़ा शेर रहता था। वह रोज शिकार पर निकलता और एक ही नहीं, दो नहीं कई-कई जानवरों का काम तमाम देता। जंगल के जानवर डरने लगे कि अगर शेर इसी तरह शिकार करता रहा तो एक दिन ऐसा आयेगा कि जंगल में कोई भी जानवर नहीं बचेगा।

सारे जंगल में सनसनी फैल गई। शेर को रोकने के लिये कोई न कोई उपाय करना ज़रूरी था। एक दिन जंगल के सारे जानवर इकट्ठा हुए और इस प्रश्न पर विचार करने लगे। अन्त में उन्होंने तय किया कि वे सब शेर

के पास जाकर उनसे इस बारे में बात करें। दूसरे दिन जानवरों के एक दल शेर के पास पहुंचा। उनके अपनी ओर आते देख शेर घबरा गया और उसने गरजकर पूछा, ''क्या बात है ? तुम सब यहां क्यों आ रहे हो ?''

जानवर दल के नेता ने कहा, ''महाराज, हम आपके पास निवेदन करने आये हैं। आप राजा हैं और हम आपकी प्रजा। जब आप शिकार करने निकलते हैं तो बहुत जानवर मार डालते हैं। आप सबको खा भी नहीं पाते। इस तरह से हमारी संख्या कम होती जा रही है। अगर ऐसा ही होता रहा तो कुछ ही दिनों में जंगल में आपके सिवाय और कोई भी नहीं बचेगा। प्रजा के बिना राजा भी कैसे रह सकता है ? यदि हम सभी मर जायेंगे तो आप भी राजा नहीं रहेंगे। हम चाहते हैं कि आप सदा हमारे राजा बने रहें। आपसे हमारी विनती है कि आप अपने घर पर ही रहा करें। हर रोज स्वयं आपके खाने के लिए एक जानवर भेज दिया करेंगे। इस तरह से राजा और प्रजा दोनो ही चैन से रह सकेंगे।'' शेर को लगा कि जानवरों की बात में सच्चाई है। उसने पलभर सोचा, फिर बोला अच्छी बात है। मैं तुम्हारे सुझाव को मान लेता हूं। लेकिन याद रखना, अगर किसी भी दिन तुमने मेरे खाने के लिये पूरा भोजन नहीं भेजा तो मैं जितने जानवर चाहूंगा, मार डालूंगा।'' जानवरों के पास तो और कोई चारा नहीं। इसलिये उन्होंने शेर की शर्त मान ली और अपने-अपने घर चले गये।

उस दिन से हर रोज शेर के खाने के लिये एक जानवर भेजा जाने लगा। इसके लिये जंगल में रहने वाले सब जानवरों में से एक-एक जानवर, बारी-बारी से चुना जाता था। कुछ दिन बाद खरगोशों की बारी भी आ गई। शेर के भोजन के लिये एक नन्हें से खरगोश को चुना गया। वह खरगोश जितना छोटा था, उतना ही चतुर भी था। उसने सोचा, बेकार में शेर के हाथों मरना मूर्खता है। अपनी जान बचाने का कोई न कोई उपाय अवश्य करना चाहिये, और हो सके तो कोई ऐसी तरकीब ढूंढ़नी चाहिये जिसे सभी को इस मुसीबत से सदा के लिए छुटकारा मिल जाये। आखिर उसने एक तरकीब सोच ही निकाली।

खरगोश धीरे-धीरे आराम से शेर के घर की ओर चल पड़ा। जब वह शेर के पास पहुंचा तो बहुत देर हो चुकी थी।

भूख के मारे शेर का बुरा हाल हो रहा था। जब उसने सिर्फ एक छोटे से खरगोश को अपनी ओर आते देखा तो गुस्से से बौखला उठा और गरजकर बोला, ''किसने तुम्हें भेजा है ? एक तो पिद्दी जैसे हो, दूसरे इतनी देर से आ रहे हो। जिन बेवकूफों ने तुम्हें भेजा है मैं उन सबको ठीक करूंगा। एक-एक का काम तमाम न किया तो मेरा नाम भी शेर नहीं।''

नन्हे खरगोश ने आदर से ज़मीन तक झुककर, ''महाराज, अगर आप कृपा करके मेरी बात सुन लें तो मुझे या और जानवरों को दोष नहीं देंगे। वे तो जानते थे कि एक छोटा सा खरगोश आपके भोजन के लिए पूरा नहीं पड़ेगा, 'इसलिए उन्होंने छह खरगोश भेजे थे। लेकिन रास्ते में हमें एक और शेर मिल गया। उसने पांच खरगोशों को मारकर खा लिया।''

यह सुनते ही शेर दहाड़कर बोला, ''क्या कहा ? दूसरा शेर ? कौन है वह ? तुमने उसे कहां देखा ?''

''महाराज, वह तो बहुत ही बड़ा शेर है'', खरगोश ने कहा, ''वह ज़मीन के अन्दर बनी एक बड़ी गुफा में से निकला था। वह तो मुझे ही मारने जा रहा था। पर मैंने उससे कहा, 'सरकार, आपको पता नहीं कि आपने क्या अन्धेर कर दिया है। हम सब अपने महाराज के भोजन के लिये जा रहे थे, लेकिन आपने उनका सारा खाना खा लिया है। हमारे महाराज ऐसी बातें सहन नहीं करेंगे। वे ज़रूर ही यहाँ आकर आपको मार डालेंगे।'

''इस पर उसने पूछा, 'कौन है तुम्हारा राजा ?' मैंने जवाब दिया, 'हमारा राजा जंगल का सबसे बड़ा शेर है।'

खटमल और बेचारी जूं

एक राजा के शयनकक्ष में मंदरीसर्पिणी नाम की जूं ने डेरा डाल रखा था। रोज रात को जब राजा जाता तो वह चुपके से बाहर निकलती और राजा का खून चूसकर फिर अपने स्थान पर जा छिपती।

संयोग से एक दिन अग्निमुख नाम का एक खटमल भी राजा के शयनकक्ष में आ पहुंचा। जूं ने जब उसे देखा तो वहां से चले जाने को कहा। उसने अपने अधिकार-क्षेत्र में किसी अन्य का दखल सहन नहीं था।

लेकिन खटमल भी कम चतुर न था, बोलो, ''देखो, मेहमान से इसी तरह बर्ताव नहीं किया जाता, मैं आज रात तुम्हारा मेहमान हूं।'' जूं अततः खटमल की चिकनी-चुपड़ी बातों में आ गई और उसे शरण देते हुए बोली, ''ठीक है, तुम यहां रातभर रुक सकते हो, लेकिन राजा को काटोगे तो नहीं उसका खून चूसने के लिए।''

खटमल बोला, ''लेकिन मैं तुम्हारा मेहमान है, मुझे कुछ तो दोगी खाने के लिए। और राजा के खून से बढ़िया भोजन और क्या हो सकता है।''

''ठीक है।'' जूं बोली, ''तुम चुपचाप राजा का खून चूस लेना, उसे पीड़ा का आभास नहीं होना चाहिए।''

''जैसा तुम कहोगी, बिलकुल वैसा ही होगा।'' कहकर खटमल शयनकक्ष में राजा के आने की प्रतीक्षा करने लगा।

रात ढलने पर राजा वहां आया और बिस्तर पर पड़कर सो गया। उसे देख खटमल सबकुछ भूलकर राजा को काटने लगा, खून चूसने के लिए। ऐसा स्वादिष्ट खून उसने पहली बार चखा था, इसलिए वह राजा को जोर-जोर से काटकर उसका खून चूसने लगा। इससे राजा के शरीर में तेज खुजली

होने लगी और उसकी नींद उचट गई। उसने क्रोध में भरकर अपने सेवकों से खटमल को ढूंढकर मारने को कहा।

यह सुनकर चतुर खटमल तो पंलग के पाए के नीचे छिप गया लेकिन चादर के कोने पर बैठी जूं राजा के सेवकों की नजर में आ गई। उन्होंने उसे पकड़ा और मार डाला।

नीले सियार की कहानी

एक बार की बात हैं कि एक सियार जंगल में एक पुराने पेड के नीचे खडा था। पूरा पेड हवा के तेज झोंके से गिर पडा। सियार उसकी चपेट में आ गया और बुरी तरह घायल हो गया। वह किसी तरह घिसटता-घिसटता अपनी मांद तक पहुंचा। कई दिन बाद वह मांद से बाहर आया। उसे भूख लग रही थी। शरीर कमज़ोर हो गया था तभी उसे एक खरगोश नजर आया। उसे दबोचने के लिए वह झपटा। सियार कुछ दूर भागकर हांफने लगा। उसके शरीर में जान ही कहां रह गई थी? फिर उसने एक बटेर का पीछा करने की कोशिश की। यहां भी वह असफल रहा। हिरण का पीछा करने की तो उसकी हिम्मत भी न हुई। वह खडा सोचने लगा। शिकार वह कर नहीं पा रहा था। भूखों मरने की नौबत आई ही समझो। क्या किया जाए? वह इधर उधर घूमने लगा पर कहीं कोई मरा जानवर नहीं मिला। घूमता-घूमता वह एक बस्ती में आ गया। उसने सोचा शायद कोई मुर्गी या उसका बच्चा हाथ लग जाए। सो वह इधर-उधर गलियों में घूमने लगा।

तभी कुत्ते भौं-भौं करते उसके पीछे पड गए। सियार को जान बचाने के लिए भागना पडा। गलियों में घुसकर उनको छकाने की कोशिश करने लगा पर कुत्ते तो कस्बे की गली-गली से परिचित थे। सियार के पीछे पडे कुत्तों की टोली बढती जा रही थी और सियार के कमज़ोर शरीर का बल समाप्त होता जा रहा था। सियार भागता हुआ रंगरेजों की बस्ती में आ पहुंचा था। वहां उसे एक घर के सामने एक बडा ड्रम नजर आया। वह

जान बचाने के लिए उसी ड्रम में कूद पडा। ड्रम में रंगरेज ने कपडे रंगने के लिए रंग घोल रखा था।

कुत्तों का टोला भौंकता चला गया। सियार सांस रोककर रंग में डूबा रहा। वह केवल सांस लेने के लिए अपनी थूथनी बाहर निकालता। जब उसे पूरा यकीन हो गया कि अब कोई ख़तरा नहीं है तो वह बाहर निकला। वह रंग में भीग चुका था। जंगल में पहुंचकर उसने देखा कि उसके शरीर का सारा रंग हरा हो गया है। उस ड्रम में रंगरेज ने हरा रंग घोल रखा था। उसके हरे रंग को जो भी जंगली जीव देखता, वह भयभीत हो जाता। उनको खौफ से कांपते देखकर रंगे सियार के दुष्ट दिमाग में एक योजना आई।

रंगे सियार ने डरकर भागते जीवों को आवाज़ दी 'भाइओ, भागो मत मेरी बात सुनो।'

उसकी बात सुनकर सभी जानवर भागते जानवर ठिठके।

उनके ठिठकने का रंगे सियार ने फ़ायदा उठाया और बोला 'देखो, देखो मेरा रंग। ऐसा रंग किसी जानवर का धरती पर हैं? नहीं न। मतलब समझो। भगवान ने मुझे यह ख़ास रंग तुम्हारे पास भेजा हैं। तुम सब जानवरों को बुला लाओ तो मैं भगवान का संदेश सुनाऊं।'

उसकी बातों का सब पर गहरा प्रभाव पडा। वे जाकर जंगल के दूसरे सभी जानवरों को बुलाकर लाए। जब सब आ गए तो रंगा सियार एक ऊंचे पत्थर पर चढकर बोला 'वन्य प्राणियो, प्रजापति ब्रह्मा ने मुझे खुद अपने हाथों से इस अलौकिक रंग का प्राणी बनाकर कहा कि संसार में जानवरों का कोई शासक नहीं है। तुम्हें जाकर जानवरों का राजा बनकर उनका कल्याण करना है। तुम्हार नाम सम्राट ककुदुम होगा। तीनों लोकों के वन्य जीव तुम्हारी प्रजा होंगे। अब तुम लोग अनाथ नहीं रहे। मेरी छत्र-छाया में निर्भय होकर रहो।'

सभी जानवर वैसे ही सियार के अजीब रंग से चकराए हुए थे। उसकी बातों ने तो जादू का काम किया। शेर, बाघ व चीते की भी ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की सांस नीचे रह गई। उसकी बात काटने की किसी में हिम्मत न हुई। देखते ही देखते सारे जानवर उसके चरणों में लोटने लगे और एक स्वर में बोले 'हे बह्मा के दूत, प्राणियों में श्रेष्ठ ककुदुम, हम आपको अपना सम्राट स्वीकार करते हैं। भगवान की इच्छा का पालन करके हमें बडी प्रसन्नता होगी।'

एक बूढे हाथी ने कहा 'हे सम्राट, अब हमें बताइए कि हमार क्या कर्तव्य हैं?'

रंगा सियार सम्राट की तरह पंजा उठाकर बोला 'तुम्हें अपने सम्राट की खूब सेवा और आदर करना चाहिए। उसे कोई तकलीफ नहीं होनी चाहिए। हमारे खाने-पीने का शाही प्रबंध होना चाहिए।'

शेर ने सिर झुकाकर कहा 'महाराज, ऐसा ही होगा। आपकी सेवा करके हमारा जीवन धन्य हो जाएगा।'

बस, सम्राट ककुदुम बने रंगे सियार के शाही ठाट हो गए। वह राजसी शान से रहने लगा।

कई लोमडियां उसकी सेवा में लगी रहतीं भालू पंखा झुलाता। सियार जिस जीव का मांस खाने की इच्छा ज़ाहिर करता, उसकी बलि दी जाती।

जब सियार घूमने निकलता तो हाथी आगे-आगे सूंड उठाकर बिगुल की तरह चिंघाडता चलता। दो शेर उसके दोनों ओर कमांडो बाडी गार्ड की तरह होते।

रोज ककुदुम का दरबार भी लगता। रंगे सियार ने एक चालाकी यह कर दी थी कि सम्राट बनते ही सियारों को शाही आदेश जारी कर उस जंगल

से भगा दिया था। उसे अपनी जाति के सियारों द्वारा पहचान लिए जाने का ख़तरा था।

एक दिन सम्राट ककुदुम खूब खा-पीकर अपने शाही मांद में आराम कर रहा था कि बाहर उजाला देखकर उठा। बाहर आया चांदनी रात खिली थी। पास के जंगल में सियारों की टोलियां ‘हू हू SSS’ की बोली बोल रही थीं। उस आवाज़ को सुनते ही ककुदुम अपना आपा खो बैठा। उसके अदंर के जन्मजात स्वभाव ने ज़ोर मारा और वह भी मुंह चांद की ओर उठाकर और सियारों के स्वर में मिलाकर ‘हू हू SSS’ करने लगा।

शेर और बाघ ने उसे ‘हू हू SSS’ करते देख लिया। वे चौंके, बाघ बोला 'अरे, यह तो सियार है। हमें धोखा देकर सम्राट बना रहा। मारो नीच को।'

शेर और बाघ उसकी ओर लपके और देखते ही देखते उसको मार डाला।

बन्दर और लकड़ी का खूंटा

एक समय शहर से कुछ ही दूरी पर एक मंदिर का निर्माण किया जा रहा था। मंदिर में लकडी का काम बहुत था इसलिए लकडी चीरने वाले बहुत से मज़दूर काम पर लगे हुए थे। यहां-वहां लकडी के लठ्टे पडे हुए थे और लठ्टे व शहतीर चीरने का काम चल रहा था। सारे मज़दूरों को दोपहर का भोजन करने के लिए शहर जाना पडता था, इसलिए दोपहर के समय एक घंटे तक वहां कोई नहीं होता था। एक दिन खाने का समय हुआ तो सारे मज़दूर काम छोडकर चल दिए। एक लठ्टा आधा चिरा रह गया था। आधे चिरे लठ्टे में मज़दूर लकडी का कीला फंसाकर चले गए। ऐसा करने से दोबारा आरी घुसाने में आसानी रहती है।

तभी वहां बंदरों का एक दल उछलता-कूदता आया। उनमें एक शरारती बंदर भी था, जो बिना मतलब चीजों से छेडछाड करता रहता था। पंगे लेना उसकी आदत थी। बंदरों के सरदार ने सबको वहां पडी चीजों से

छेडछाड न करने का आदेश दिया। सारे बंदर पेडों की ओर चल दिए, पर वह शैतान बंदर सबकी नजर बचाकर पीछे रह गया और लगा अडंगेबाजी करने।

उसकी नजर अधचिरे लठ्टे पर पडी। बस, वह उसी पर पिल पडा और बीच में अडाए गए कीले को देखने लगा। फिर उसने पास पडी आरी को देखा। उसे उठाकर लकडी पर रगडने लगा। उससे किर्रर्र-किर्रर्र की आवाज़ निकलने लगी तो उसने गुस्से से आरी पटक दी। उन बंदरो की भाषा में किर्रर्र-किर्रर्र का अर्थ 'निखट्टू' था। वह दोबारा लठ्टे के बीच फंसे कीले को देखने लगा।

उसके दिमाग में कौतुहल होने लगा कि इस कीले को लठ्टे के बीच में से निकाल दिया जाए तो क्या होगा? अब वह कीले को पकडकर उसे बाहर निकालने के लिए ज़ोर आजमाईश करने लगा। लठ्टे के बीच फंसाया गया कीला तो दो पाटों के बीच बहुत मज़बूती से जकडा गया होता हैं, क्योंकि लठ्टे के दो पाट बहुत मज़बूत स्प्रिंग वाले क्लिप की तरह उसे दबाए रहते हैं।

बंदर खूब ज़ोर लगाकर उसे हिलाने की कोशिश करने लगा। कीला जोर लगाने पर हिलने व खिसकने लगा तो बंदर अपनी शक्ति पर खुश हो गया।

वह और ज़ोर से खौं-खौं करता कीला सरकाने लगा। इस धींगामुश्ती के बीच बंदर की पूंछ दो पाटों के बीच आ गई थी, जिसका उसे पता ही नहीं लगा।

उसने उत्साहित होकर एक जोरदार झटका मारा और जैसे ही कीला बाहर खिंचा, लठ्टे के दो चिरे भाग फटाक से क्लिप की तरह जुड गए और बीच में फंस गई बंदर की पूंछ। बंदर चिल्ला उठा।

तभी मज़दूर वहां लौटे। उन्हें देखते ही बंदर ने भागने के लिए ज़ोर लगाया तो उसकी पूंछ टूट गई। वह चीखता हुआ टूटी पूंछ लेकर भागा।

शेर, ऊंट, सियार और कौवा

किसी वन में मदोत्कट नाम का सिंह निवास करता था। बाघ, कौआ और सियार, ये तीन उसके नौकर थे। एक दिन उन्होंने एक ऐसे उंट को देखा जो अपने गिरोह से भटककर उनकी ओर आ गया था। उसको देखकर सिंह कहने लगा, “अरे वाह! यह तो विचित्र जीव है। जाकर पता तो लगाओ कि यह वन्य प्राणी है अथवा कि ग्राम्य प्राणी” यह सुनकर कौआ बोला, “स्वामी! यह ऊंट नाम का जीव ग्राम्य-प्राणी है और आपका भोजन है। आप इसको मारकर खा जाइए।”

सिंह बोला, “ मैं अपने यहां आने वाले अतिथि को नहीं मारता। कहा गया है कि विश्वस्त और निर्भय होकर अपने घर आए शत्रु को भी नहीं मारना चाहिए। अतः उसको अभयदान देकर यहां मेरे पास ले आओ जिससे मैं उसके यहां आने का कारण पूछ सकूं।”

सिंह की आज्ञा पाकर उसके अनुचर ऊंट के पास गए और उसको आदरपूर्वक सिंह के पास ले लाए। ऊंट ने सिंह को प्रणाम किया और बैठ गया। सिंह ने जब उसके वन में विचरने का कारण पूछा तो उसने अपना परिचय देते हुए बताया कि वह साथियों से बिछुड़कर भटक गया है। सिंह के कहने पर उस दिन से वह कथनक नाम का ऊंट उनके साथ ही रहने लगा।

उसके कुछ दिन बाद मदोत्कट सिंह का किसी जंगली हाथी के साथ घमासान युद्ध हुआ। उस हाथी के मूसल के समान दांतों के प्रहार से सिंह अधमरा तो हो गया किन्तु किसी प्रकार जीवित रहा, पर वह चलने-फिरने में अशक्त हो गया था। उसके अशक्त हो जाने से कौवे आदि उसके नौकर भूखे रहने लगे। क्योंकि सिंह जब शिकार करता था तो उसके नौकरों को उसमें से भोजन मिला करता था।

अब सिंह शिकार करने में असमर्थ था। उनकी दुर्दशा देखकर सिंह बोला, “किसी ऐसे जीव की खोज करो कि जिसको मैं इस अवस्था में भी मारकर तुम लोगों के भोजन की व्यवस्था कर सकूं।” सिंह की आज्ञा पाकर वे चारों प्राणी हर तरफ शिकार की तलाश में घूमने निकले। जब कहीं कुछ नहीं मिला तो कौए और सियार ने परस्पर मिलकर सलाह की। श्रृगाल बोला, “मित्र कौवे! इधर-उधर भटकने से क्या लाभ? क्यों न इस कथनक को मारकर उसका ही भोजन किया जाए?”

सियार सिंह के पास गया और वहां पहुंचकर कहने लगा, “स्वामी! हम सबने मिलकर सारा वन छान मारा है, किन्तु कहीं कोई ऐसा पशु नहीं मिला कि जिसको हम आपके समीप मारने के लिए ला पाते। अब भूख इतनी सता रही है कि हमारे लिए एक भी पग चलना कठिन हो गया है। आप बीमार हैं। यदि आपकी आज्ञा हो तो आज कथनक के मांस से ही आपके खाने का प्रबंध किया जाए।” पर सिंह ने यह कहते हुए मना कर दिया कि उसने ऊंट को अपने यहां पनाह दी है इसलिए वह उसे मार नहीं सकता।

पर सियार ने सिंह को किसी तरह मना ही लिया। राजा की आज्ञा पाते ही श्रृगाल ने तत्काल अपने साथियों को बुलाया लाया। उसके साथ ऊंट भी आया। उन्हें देखकर सिंह ने पूछा, “तुम लोगों को कुछ मिला?”

कौवा, सियार, बाघ सहित दूसरे जानवरों ने बता दिया कि उन्हें कुछ नहीं मिला। पर अपने राजा की भूख मिटाने के लिए सभी बारी-बारी से सिंह के आगे आए और विनती की कि वह उन्हें मारकर खा लें। पर सियार हर किसी में कुछ न कुछ खामी बता देता ताकि सिंह उन्हें न मार सके।

अंत में ऊंट की बारी आई। बेचारे सीधे-साधे कथनक ऊंट ने जब यह देखा कि सभी सेवक अपनी जान देने की विनती कर रहे हैं तो वह भी पीछे नहीं रहा।

उसने सिंह को प्रणाम करके कहा, “स्वामी! ये सभी आपके लिए अभक्ष्य हैं। किसी का आकार छोटा है, किसी के तेज नाखून हैं, किसी की देह पर घने बाल हैं। आज तो आप मेरे ही शरीर से अपनी जीविका चलाइए जिससे कि मुझे दोनों लोकों की प्राप्ति हो सके।”

कथनक का इतना कहना था कि व्याघ्र और सियार उस पर झपट पड़े और देखते-ही-देखते उसके पेट को चीरकर रख दिया। बस फिर क्या था, भूख से पीड़ित सिंह और व्याघ्र आदि ने तुरन्त ही उसको चट कर डाला।

चिड़िया का जोडा़ और समुद्र का अभिमान

समुद्रतट के एक भाग में एक चिड़िया का जोडा़ रहता था। अंडे देने से पहले चिड़िया ने अपने पति को किसी सुरक्षित प्रदेश की खोज करने के लिये कहा । चिडे ने कहा - "यहां सभी स्थान पर्याप्त सुरक्षित हैं, तू चिन्ता न कर।"

चिड़िया - "समुद्र में जब ज्वार आता है तो उसकी लहरें मतवाले हाथी को भी खींच कर ले जाती हैं, इसलिये हमें इन लहरों से दूर कोई स्थान देख रखना चाहिये।"

चिड़ा - "समुद्र इतना दुःसाहसी नहीं है कि वह मेरी सन्तान को हानि पहुँचाये। वह मुझ से डरता है । इसलिये तू निःशंक होकर यहीं तट पर अंडे दे दे।"

समुद्र ने चिडे की ये बातें सुनलीं। उसने सोचा - "यह चिड़ा बहुत अभिमानी है। आकाश की ओर टांगें करके भी यह इसीलिये सोता है कि इन टांगों पर गिरते हुए आकाश को थाम लेगा । इसके अभिमान का भंग होना चाहिये। "यह सोचकर उसने ज्वार आने पर चिड़िया के अंडों को लहरों में बहा दिया।

चिड़िया जब दूसरे दिन आई तो अंडों को बहता देखकर रोती-बिलखति चिडे से बोली - "मूर्ख ! मैंने पहिले ही कहा था कि समुद्र की लहरें इन्हें बहा ले जायंगी । किन्तु तूने अभिमानवश मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया । अपने प्रियजनों के कथन पर भी जो कान नहीं देता उसकी दुर्गति होती ही है।

इसके अतिरिक्त बुद्धिमानों में भी वही बुद्धिमान सफल होते हैं जो बिना आई विपत्ति का पहले से ही उपाय सोचते हैं, और जिनकी बुद्धि तत्काल अपनी रक्षा का उपाय सोच लेती है। 'जो होगा, देखा जायगा' कहने वाले शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।"

यह बात सुनकर चिडे ने चिड़िया से कहा - मैं 'यद्भविष्य' जैसा मूर्ख और निष्कर्म नहीं हूँ । मेरी बुद्धि का चमत्कार देखती जा, मैं अभी अपनी चोंच से पानी बाहिर निकाल कर समुद्र को सुखा देता हूँ।"

चिड़िया - "समुद्र के साथ तेरा वैर तुझे शोभा नहीं देता । इस पर क्रोध करने से क्या लाभ ? अपनी शक्ति देखकर हमे किसी से बैर करना चाहिये । नहीं तो आग में जलने वाले पतंगे जैसी गति होगी।"

चिड़ा फिर भी अपनी चोंचों से समुद्र को सुखा डालने की डीगें मारता रहा। तब, चिड़िया ने फिर उसे मना करते हुए कहा कि जिस समुद्र को गंगा-यमुना जैसि सैंकड़ों नदियां निरन्तर पानी से भर रही हैं उसे तू अपने बूंद-भर उठाने वाली चोंचों से कैसे खाली कर देगा ?

चिड़ा तब भी अपने हठ पर तुला रहा। तब, चिड़िया ने कहा - "यदि तूने समुद्र को सुखाने का हठ ही कर लिया है तो अन्य पक्षियों की भी सलाह लेकर काम कर। कई बार छोटे २ प्राणी मिलकर अपने से बहुत बड़े जीव को भी हरा देते हैं; जैसे चिड़िया, कठफोड़े और मेंढक ने मिलकर हाथी को मार दिया था।

चिड़ा - "अच्छी बात है। मैं भी दूसरे पक्षियों की सहायता से समुद्र को सुखाने का यत्न करुँगा ।"

यह कहकर उसने बगुले, सारस, मोर आदि अनेक पक्षियों को बुलाकर अपनी दुःख-कथा सुनाई। उन्होंने कहा - "हम तो अशक्त हैं, किन्तु हमारा मित्र गरुड़ अवश्य इस संबन्ध में हमारी सहायता कर सकता है ।' तब सब पक्षी मिलकर गरुड़ के पस जाकर रोने और चिल्लाने लगे - "गरुड़ महाराज ! आप के रहते हमारे पक्षिकुल पर समुद्र ने यह अत्याचार कर दिया । हम इसका बदला चाहते हैं। आज उसने चिड़िया के अंडे नष्ट किये हैं, कल वह दूसरे पक्षियों के अंडों को बहा ले जायगा। इस अत्याचार की रोक-थाम होनी चाहिये। अन्यथा संपूर्ण पक्षिकुल नष्ट हो जायगा ।"

गरुड़ ने पक्षियों का रोना सुनकर उनकी सहायता करने का निश्चय किया। उसी समय उसके पास भगवान् विष्णु का दूत आया। उस दूत द्वारा भगवान विष्णु ने उसे सवारी के लिये बुलाया था। गरुड़ ने दूत से क्रोधपूर्वक कहा कि वह विष्णु भगवान को कह दे कि वह दूसरी सवारी का प्रबन्ध कर लें । दूत ने गरुड़ के क्रोध का कारण पूछा तो गरुड़ ने समुद्र के अत्याचार की कथा सुनाई ।

दूत के मुख से गरुड़ के क्रोध की कहानी सुनकर भगवान विष्णु स्वयं गरुड़ के घर गये । वहाँ पहुँचने पर गरुड़ ने प्रणामपूर्वक विनम्र शब्दों में कहा - "भगवन् ! आप के आश्रम का अभिमान करके समुद्र ने मेरे साथी पक्षियों के अंडों का अपहरण कर लिया है । इस तरह मुझे भी अपमानित किया है । मैं समुद्र से इस अपमान का बदला लेना चाहता हूँ ।"

भगवान विष्णु बोले - "गरुड़ ! तुम्हारा क्रोध युक्तियुक्त है । समुद्र को ऐसा काम नहीं करना चाहिये था । चलो, मैं अभी समुद्र से उन अंडों को वापिस लेकर चिड़िया को दिलवा देता हूँ । उसके बाद हमें अमरावती जाना है ।"

तब भगवान ने अपने धनुष पर 'आग्नेय" बाण को चढ़ाकर समुद्र से कहा - "दुष्ट ! अभी उन सब अंडों को वापिस देदे, नहीं तो तुझे क्षण भर में सुखा दूंगा ।"

भगवान विष्णु के भय से समुद्र ने उसी क्षण अंडे वापिस दे दिये ।

मूर्ख बातूनी कछुआ

एक तालाब में कम्बुग्रीव नामक एक कछुआ रहता था। उसी तलाब में दो हंस तैरने के लिए उतरते थे। हंस बहुत हंसमुख और मिलनसार थे। कछुए और उनमें दोस्ती होते देर न लगी। हंसो को कछुए का धीमे-धीमे चलना और उसका भोलापन बहुत अच्छा लगा। हंस बहुत ज्ञानी भी थे। वे कछुए को अदभुत बातें बताते। ऋषि-मुनियों की कहानियां सुनाते। हंस तो दूर-दूर तक घूमकर आते थे, इसलिए दूसरी जगहों की अनोखी बातें कछुए को बताते। कछुआ मंत्रमुग्ध होकर उनकी बातें सुनता। बाकी तो सब ठीक था, पर कछुए को बीच में टोका-टाकी करने की बहुत आदत थी। अपने सज्जन स्वभाव के कारण हंस उसकी इस आदत का बुरा नहीं मानते थे। उन तीनों की घनिष्टता बढती गई। दिन गुजरते गए।

एक बार बडे जोर का सुखा पडा। बरसात के मौसम में भी एक बूंद पानी नहीं बरसा। उस तालाब का पानी सूखने लगा। प्राणी मरने लगे, मछलियां तो तडप-तडपकर मर गईं। तालाब का पानी और तेजी से सूखने लगा। एक समय ऐसा भी आया कि तालाब में खाली कीचड रह गया। कछुआ बडे संकट में पड गया। जीवन-मरण का प्रश्न खडा हो गया। वहीं पडा रहता तो कछुए का अंत निश्चित था। हंस अपने मित्र पर आए संकट को दूर करने का उपाय सोचने लगे। वे अपने मित्र कछुए को ढाडस बंधाने का प्रयत्न करते और हिम्म्त न हारने की सलाह देते। हंस केवल झूठा दिलासा नहीं दे रहे थे। वे दूर-दूर तक उडकर समस्या का हल ढूढते। एक दिन लौटकर हंसो ने कहा "मित्र, यहां से पचास कोस दूर एक झील हैं।उसमें काफी पानी हैं तुम वहां मजे से रहोगे।" कछुआ रोनी आवाज में

बोला “पचास कोस? इतनी दूर जाने में मुझे महीनों लगेंगे। तब तक तो मैं मर जाऊंगा।”

कछुए की बात भी ठीक थी। हंसो ने अक्ल लडाई और एक तरीका सोच निकाला।

वे एक लकडी उठाकर लाए और बोले “मित्र, हम दोनों अपनी चोंच में इस लकडी के सिरे पकडकर एक साथ उडेंगे। तुम इस लकडी को बीच में से मुंह से थामे रहना। इस प्रकार हम उस झील तक तुम्हें पहुंचा देंगे उसके बाद तुम्हें कोई चिन्ता नहीं रहेगी।”

उन्होंने चेतावनी दी “पर याद रखना, उड़ान के दौरान अपना मुंह न खोलना। वरना गिर पडोगे।”

कछुए ने हामी में सिर हिलाया। बस, लकडी पकडकर हंस उड चले। उनके बीच में लकडी मुंह दाबे कछुआ। वे एक कस्बे के ऊपर से उड रहे थे कि नीचे खडे लोगों ने आकाश में अदभुत नजारा देखा। सब एक दूसरे को ऊपर आकाश का दृश्य दिखाने लगे। लोग दौड-दौडकर अपने छज्जों पर निकल आए। कुछ अपने मकानों की छतों की ओर दौडे। बच्चे बूडे, औरतें व जवान सब ऊपर देखने लगे। खूब शोर मचा। कछुए की नजर नीचे उन लोगों पर पडी।

उसे आश्चर्य हुआ कि उन्हें इतने लोग देख रहे हैं। वह अपने मित्रों की चेतावनी भूल गया और चिल्लाया “देखो, कितने लोग हमें देख रहे है!” मुंह के खुलते ही वह नीचे गिर पडा। नीचे उसकी हड्डी-पसली का भी पता नहीं लगा।

तीन मछलियां

एक नदी के किनारे उसी नदी से जुडा एक बडा जलाशय था। जलाशय में पानी गहरा होता हैं, इसलिए उसमें काई तथा मछलियों का प्रिय भोजन

जलीय सूक्ष्म पौधे उगते हैं। ऐसे स्थान मछलियों को बहुत रास आते हैं। उस जलाशय में भी नदी से बहुत-सी मछलियां आकर रहती थी। अंडे देने के लिए तो सभी मछलियां उस जलाशय में आती थी। वह जलाशय लम्बी घास व झाडियों द्वारा घिरा होने के कारण आसानी से नजर नहीं आता था।

उसी मे तीन मछलियों का झुंड रहता था। उनके स्वभाव भिन्न थे। अन्ना संकट आने के लक्षण मिलते ही संकट टालने का उपाय करने में विश्वास रखती थी। प्रत्यु कहती थी कि संकट आने पर ही उससे बचने का यत्न करो। यद्दी का सोचना था कि संकट को टालने या उससे बचने की बात बेकार हैं करने कराने से कुछ नहीं होता जो किस्मत में लिखा है, वह होकर रहेगा।

एक दिन शाम को मछुआरे नदी में मछलियां पकडकर घर जा रहे थे। बहुत कम मछलियां उनके जालों में फंसी थी। अतः उनके चेहरे उदास थे। तभी उन्हें झाडियों के ऊपर मछलीखोर पक्षियों का झुंड जाता दिकाई दिया। सबकी चोंच में मछलियां दबी थी। वे चौंके ।

एक ने अनुमान लगाया "दोस्तो! लगता हैं झाडियों के पीछे नदी से जुडा जलाशय हैं, जहां इतनी सारी मछलियां पल रही हैं।"

मछुआरे पुलकित होकर झाडियों में से होकर जलाशय के तट पर आ निकले और ललचाई नजर से मछलियों को देखने लगे।

एक मछुआरा बोला "अहा! इस जलाशय में तो मछलियां भरी पडी हैं। आज तक हमें इसका पता ही नहीं लगा।" "यहां हमें ढेर सारी मछलियां मिलेंगी।" दूसरा बोला।

तीसरे ने कहा "आज तो शाम घिरने वाली हैं। कल सुबह ही आकर यहां जाल डालेंगे।"

इस प्रकार मछुआरे दूसरे दिन का कार्यक्रम तय करके चले गए। तीनों मछ्लियों ने मछुआरे की बात सुन ला थी।

अन्ना मछली ने कहा "साथियो! तुमने मछुआरे की बात सुन ली। अब हमारा यहां रहना खतरे से खाली नहीं हैं। खतरे की सूचना हमें मिल गई हैं। समय रहते अपनी जान बचाने का उपाय करना चाहिए। मैं तो अभी ही इस जलाशय को छोडकर नहर के रास्ते नदी में जा रही हूं। उसके बाद मछुआरे सुबह आएं, जाल फेंके, मेरी बला से। तब तक मैं तो बहुत दूर अटखेलियां कर रही हो-ऊंगी।'

प्रत्यु मछली बोली "तुम्हें जाना हैं तो जाओ, मैं तो नहीं आ रही। अभी खतरा आया कहां हैं, जो इतना घबराने की जरुरत हैं हो सकता है संकट आए ही न। उन मछुआरों का यहां आने का कार्यक्रम रद्द हो सकता है, हो सकता हैं रात को उनके जाल चूहे कुतर जाएं, हो सकता है। उनकी बस्ती में आग लग जाए। भूचाल आकर उनके गांव को नष्ट कर सकता हैं या रात को मूसलाधार वर्षा आ सकती हैं और बाढ में उनका गांव बह सकता हैं। इसलिए उनका आना निश्चित नहीं हैं। जब वह आएंगे, तब की तब सोचेंगे। हो सकता हैं मैं उनके जाल में ही न फंसूं।"

यद्दी ने अपनी भाग्यवादी बात कही "भागने से कुछ नहीं होने का। मछुआरों को आना हैं तो वह आएंगे। हमें जाल में फंसना हैं तो हम फंसेंगे। किस्मत में मरना ही लिखा हैं तो क्या किया जा सकता हैं?"

इस प्रकार अन्ना तो उसी समय वहां से चली गई। प्रत्यु और यद्दी जलाशय में ही रही। भोर हुई तो मछुआरे अपने जाल को लेकर आए और लगे जलाशय में जाल फेंकने और मछलियां पकडने । प्रत्यु ने संकट को आए देखा तो लगी जान बचाने के उपाय सोचने । उसका दिमाग तेजी से काम करने लगा। आस-पास छिपने के लिए कोई खोखली जगह भी नहीं थी। तभी उसे याद आया कि उस जलाशय में काफी दिनों से एक मरे हुए ऊदबिलाव की लाश तैरती रही हैं। वह उसके बचाव के काम आ सकती हैं।

जल्दी ही उसे वह लाश मिल गई। लाश सडने लगी थी। प्रत्यु लाश के पेट में घुस गई और सडती लाश की सडांध अपने ऊपर लपेटकर बाहर निकली। कुछ ही देर में मछुआरे के जाल में प्रत्यु फंस गई। मछुआरे ने अपना जाल खींचा और मछलियों को किनारे पर जाल से उलट दिया। बाकी मछलियां तो तडपने लगीं, परन्तु प्रत्यु दम साधकर मरी हुई मछली की तरह पडी रही। मचुआरे को सडांध का भभका लगा तो मछलियों को देखने लगा। उसने निश्चल पडी प्रत्यु को उठाया और सूंघा "आक! यह तो कई दिनों की मरी मछली हैं। सड चुकी हैं।" ऐसे बडबडाकर बुरा-सा मुंह बनाकर उस मछुआरे ने प्रत्यु को जलाशय में फेंक दिया।

प्रत्यु अपनी बुद्धि का प्रयोग कर संकट से बच निकलने में सफल हो गई थी। पानी में गिरते ही उसने गोता लगाया और सुरक्षित गहराई में पहुंचकर जान की खैर मनाई।

यद्दी भी दूसरे मछुआरे के जाल में फंस गई थी और एक टोकरे में डाल दी गई थी। भाग्य के भरोसे बैठी रहने वाली यद्दी ने उसी टोकरी में अन्य मछलियों की तरह तडप-तडपकर प्राण त्याग दिए।

गौरैया और हाथी

किसी पेड़ पर एक गौरैया अपने पति के साथ रहती थी। वह अपने घोंसले में अंडों से चूजों के निकलने का बेसब्री से इंतज़ार कर रही थी।

एक दिन की बात है गौरैया अपने अंडों को से रही थी और उसका पति भी रोज की तरह खाने के इन्तेजाम के लिए बाहर गया हुआ था।

तभी वहां एक गुस्सैल हाथी आया और आस-पास के पेड़ पौधों को रौंदते हुए तोड़-फोड़ करने लगा। उसी तोड़ फोड़ के दौरान वह गौरैया के पेड़ तक भी पहुंचा और उसने पेड़ को गिराने के लिए उसे जोर-जोर से हिलाया, पेड़ को काफी मजबूत था इसलिए हाथी पेड़ को तो नहीं तोड़

पाया और वहां से चला गया, लेकिन उसके हिलाने से गौरैया का घोसला टूटकर नीचे आ गिरा और उसके सारे अंडे फूट गए।

गौरैया बहुत दुखी हुयी और जोर जोर से रोने लगी, तभी उसका पति भी वापस आ गया, वह भी बेचारा बहुत दुखी हुआ और उन्होंने हाथी से बदला लेने और उसे सबक सिखाने का फैसला किया।

वे अपने एक मित्र, जो कि एक कठफोड़वा था, के पास पहुंचे और उसे सारी बात बताई। वे हाथी से बदला लेने के लिए कठफोड़वा की मदद चाहते थे। उस कठफोड़वा के दो अन्य दोस्त थे; एक मधुमक्खी और एक मेंढक। उन्होंने मिलकर हाथी से बदला लेने की योजना बनाई।

तय योजना के तहत सबसे पहले मधुमक्खी ने काम शुरू किया। उसने हाथी के कान में गाना गुनगुनाना शुरू किया। हाथी को उस संगीत में मजा आने और जब हाथी संगीत में डूबा हुआ था, तो कठफोड़वा ने अगले चरण पर काम करना शुरू कर दिया। उसने हाथी की दोनों आँखें फोड़ दी। हाथी दर्द से कराहने लगा।

उसके बाद मेंढक अपनी पलटन के साथ एक दलदल के पास गया और सब मिलकर टर्राने लगे। मेंढकों का टर्राना सुनकर हाथी को लगा कि पास में ही कोई तालाब है। वह उस आवाज की दिशा में गया और दलदल में फंस गया। इस तरह से हाथी धीरे-धीरे दलदल में फंस गया और मर गया।

सिंह और सियार

वर्षों पहले हिमालय की किसी कन्दरा में एक बलिष्ठ शेर रहा करता था। एक दिन वह एक भैंसे का शिकार और भक्षण कर अपनी गुफा को लौट रहा था। तभी रास्ते में उसे एक मरियल-सा सियार मिला जिसने उसे लेटकर दण्डवत् प्रणाम किया।

जब शेर ने उससे ऐसा करने का कारण पूछा तो उसने कहा, "सरकार मैं आपका सेवक बनना चाहता हूँ। कृपया मुझे आप अपनी शरण में ले लें। मैं आपकी सेवा करूँगा और आपके द्वारा छोड़े गये शिकार से अपना गुजर-बसर कर लूंगा।' शेर ने उसकी बात मान ली और उसे मित्रवत अपनी शरण में रखा।

कुछ ही दिनों में शेर द्वारा छोड़े गये शिकार को खा-खा कर वह सियार बहुत मोटा हो गया।

प्रतिदिन सिंह के पराक्रम को देख-देख उसने भी स्वयं को सिंह का प्रतिरुप मान लिया। एक दिन उसने सिंह से कहा, 'अरे सिंह ! मैं भी अब तुम्हारी तरह शक्तिशाली हो गया हूँ। आज मैं एक हाथी का शिकार करुंगा और उसका भक्षण करुंगा और उसके बचे-खुचे माँस को तुम्हारे लिए छोड़ दूँगा।'

चूँकि सिंह उस सियार को मित्रवत् देखता था, इसलिए उसने उसकी बातों का बुरा न मान उसे ऐसा करने से रोका।

भ्रम-जाल में फँसा वह दम्भी सियार सिंह के परामर्श को अस्वीकार करता हुआ पहाड़ की चोटी पर जा खड़ा हुआ। वहाँ से उसने चारों ओर नज़रें दौड़ाई तो पहाड़ के नीचे हाथियों के एक छोटे से समूह को देखा। फिर सिंह-नाद की तरह तीन बार सियार की आवाजें लगा कर एक बड़े हाथी के ऊपर कूद पड़ा। किन्तु हाथी के सिर के ऊपर न गिर वह उसके पैरों पर जा गिरा। और हाथी अपनी मस्तानी चाल से अपना अगला पैर उसके सिर के ऊपर रख आगे बढ़ गया। क्षण भर में सियार का सिर चकनाचूर हो गया और उसके प्राण पखेरु उड़ गये।

पहाड़ के ऊपर से सियार की सारी हरकतें देखता हुआ सिंह ने तब यह गाथा कही – 'होते है जो मूर्ख और घमण्डी, होती है उनकी ऐसी ही गति।'

चिड़िया और बन्दर

एक जंगल में एक पेड पर गौरैया का घोंसला था। एक दिन कडाके की ठंड पड रही थी। ठंड से कांपते हुए तीन चार बंदरो ने उसी पेड के नीचे आश्रय लिया। एक बंदर बोला "कहीं से आग तापने को मिले तो ठंड दूर हो सकती हैं।"

दूसरे बंदर ने सुझाया "देखो, यहां कितनी सूखी पत्तियां गिरी पडी हैं। इन्हें इकट्ठा कर हम ढेर लगाते हैं और फिर उसे सुलगाने का उपाय सोचते हैं।"

बंदरों ने सूखी पत्तियों का ढेर बनाया और फिर गोल दायरे में बैठकर सोचने लगे कि ढेर को कैसे सुलगाया जाए। तभी एक बंदर की नजर दूर हवा में उडते एक जुगनू पर पडी और वह उछल पडा। उधर ही दौडता हुआ चिल्लाने लगा "देखो, हवा में चिंगारी उड रही हैं। इसे पकडकर ढेर के नीचे रखकर फूंक मारने से आग सुलग जाएगी।"

"हां हां!" कहते हुए बाकी बंदर भी उधर दौडने लगे। पेड पर अपने घोंसले में बैठी गौरैया यह सब देख रही थे। उससे चुप नहीं रहा गया। वह बोली" बंदर भाइयो, यह चिंगारी नहीं हैं यह तो जुगनू हैं।"

एक बंदर क्रोध से गौरैया की देखकर गुर्राया "मूर्ख चिडिया, चुपचाप घोंसले में दुबकी रह। हमें सिखाने चली हैं।"

इस बीच एक बंदर उछलकर जुगनू को अपनी हथेलियों के बीच कटोरा बनाकर कैद करने में सफल हो गया। जुगनू को ढेर के नीचे रख दिया गया और सारे बंदर लगे चारों ओर से ढेर में फूंक मारने।

गौरैया ने सलाह दी “भाइयो! आप लोग गलती कर रहें हैं। जुगनू से आग नहीं सुलगेगी। दो पत्थरों को टकराकर उससे चिंगारी पैदा करके आग सुलगाइए।”

बंदरों ने गौरैया को घूरा। आग नहीं सुलगी तो गौरैया फिर बोल उठी “भाइयो! आप मेरी सलाह मानिए, कम से कम दो सूखी लकडियों को आपस में रगडकर देखिए।”

सारे बंदर आग न सुलगा पाने के कारण खीजे हुए थे। एक बंदर क्रोध से भरकर आगे बढा और उसने गौरैया पकडकर जोर से पेड के तने पर मारा। गौरैया फडफडाती हुई नीचे गिरी और मर गई।

गौरैया और बन्दर

किसी जंगल के एक घने वृक्ष की शाखाओं पर चिड़ा-चिडी़ का एक जोड़ा रहता था । अपने घोंसले में दोनों बड़े सुख से रहते थे ।

सर्दियों का मौसम था । एक दिन हेमन्त की ठंडी हवा चलने लगी और साथ में बूंदा-बांदी भी शुरु हो गई । उस समय एक बन्दर बर्फ़ीली हवा और बरसात से ठिठुरता हुआ उस वृक्ष की शाखा पर आ बैठा।

जाड़े के मारे उसके दांत कटकटा रहे थे । उसे देखकर चिड़िया ने कहा:- "अरे ! तुम कौन हो ? देखने में तो तुम्हारा चेहरा आदमियों का सा है; हाथ-पैर भी हैं तुम्हारे । फिर भी तुम यहाँ बैठे हो, घर बनाकर क्यों नहीं रहते ?"

बन्दर बोला :-"अरी ! तुम से चुप नहीं रहा जाता ? तू अपना काम कर । मेरा उपहास क्यों करती है ?"

चिड़िया फिर भी कुछ कहती गई । वह चिड़ गया । क्रोध में आकर उसने चिड़िया के उस घोंसले को तोड़-फोड़ डाला जिसमें चिड़ा-चिड़ी सुख से रहते थे ।

मित्र-द्रोह का फल

दो मित्र धर्मबुद्धि और पापबुद्धि हिम्मत नगर में रहते थे। एक बार पापबुद्धि के मन में एक विचार आया कि क्यों न मैं मित्र धर्मबुद्धि के साथ दूसरे देश जाकर धनोपार्जन करूँ। बाद में किसी न किसी युक्ति से उसका सारा धन ठग-हड़प कर सुख-चैन से पूरी जिंदगी जीऊँगा। इसी नियति से पापबुद्धि ने धर्मबुद्धि को धन और ज्ञान प्राप्त होने का लोभ देते हुए अपने साथ बाहर जाने के लिए राजी कर लिया।

शुभ-मुहूर्त देखकर दोनों मित्र एक अन्य शहर के लिए रवाना हुए। जाते समय अपने साथ बहुत सा माल लेकर गये तथा मुँह माँगे दामों पर बेचकर खूब धनोपार्जन किया। अंततः प्रसन्न मन से गाँव की तरफ लौट गये।

गाँव के निकट पहुँचने पर पापबुद्धि ने धर्मबुद्धि को कहा कि मेरे विचार से गाँव में एक साथ सारा धन ले जाना उचित नहीं है। कुछ लोगों को हमसे ईर्ष्या होने लगेगी, तो कुछ लोग कर्ज के रुप में पैसा माँगने लगेंगे। संभव है कि कोई चोर ही इसे चुरा ले। मेरे विचार से कुछ धन हमें जंगल में ही किसी सुरक्षित स्थान पर गाढ़ देनी चाहिए। अन्यथा सारा धन देखकर सन्यासी व महात्माओं का मन भी डोल जाता है।

सीधे-साधे धर्मबुद्धि ने पुनः पापबुद्धि के विचार में अपनी सहमति जताई। वहीं किसी सुरक्षित स्थान पर दोनों ने गड्ढ़े खोदकर अपना धन दबा दिया तथा घर की ओर प्रस्थान कर गये।

बाद में मौका देखकर एक रात कुबुद्धि ने वहाँ गड़े सारे धन को चुपके से निकालकर हथिया लिया।कुछ दिनों के बाद धर्मबुद्धि ने पापबुद्धि से कहा: भाई मुझे कुछ धन की आवश्यकता है। अतः आप मेरे साथ

चलिए।पापबुद्धि तैयार हो गया।जब उसने धन निकालने के लिए गड्ढे को खोदा, तो वहाँ कुछ भी नहीं मिला। पापबुद्धि ने तुरंत रोने-चिल्लाने का अभिनय किया। उसने धर्मबुद्धि पर धन निकाल लेने का इल्जाम लगा दिया। दोनों लड़ने-झगड़ते न्यायाधीश के पास पहुँचे।

न्यायाधीश के सम्मुख दोनों ने अपना-अपना पक्ष प्रस्तुत किया। न्यायाधीश ने सत्य का पता लगाने के लिए दिव्य-परीक्षा का आदेश दिया।

दोनों को बारी-बारी से अपने हाथ जलती हुई आग में डालने थे। पापबुद्धि ने इसका विरोध किया उसने कहा कि वन देवता गवाही देंगे। न्यायधीश ने यह मान लिया। पापबुद्धि ने अपने बाप को एक सूखे हुए पेड़ के खोखले में बैठा दिया। न्यायधीश ने पूछा तो आवाज आई कि चोरी धर्मबुद्धि ने की है।

तभी धर्मबुद्धि ने पेड़ के नीचे आग लगा दी। पेड़ जलने लगा और उसके साथ ही पापबुद्धि का बाप भी, वो बुरी तरह रोने-चिल्लाने लगा। थोड़ी देर में पापबुद्धि का पिता आग से झुलसा हुआ उस वृक्ष की जड़ में से निकला। उसने वनदेवता की साक्षी का सच्चा भेद प्रकट कर दिया।

न्यायाधीश ने पापबुद्धि को मौत की सजा दी और धर्मबुद्धि को उसका पूरा धन दिलवाया और कहा कि मनुष्य का यह धर्म है कि वह उपाय की चिन्ता के साथ अपाय की भी चिन्ता करे।

मूर्ख बगुला और नेवला

जंगल के एक बड़े वट-वृक्ष की खोल में बहुत से बगुले रहते थे । उसी वृक्ष की जड़ में एक साँप भी रहता था । वह बगलों के छोटे-छोटे बच्चों को खा जाता था ।

एक बगुला साँप द्वार बार-बार बच्चों के खाये जाने पर बहुत दुःखी और विरक्त सा होकर नदी के किनारे आ बैठा ।

उसकी आँखों में आँसू भरे हुए थे । उसे इस प्रकार दुःखमग्न देखकर एक केकड़े ने पानी से निकल कर उसे कहा :-"मामा ! क्या बात है, आज रो क्यों रहे हो ?"

बगुले ने कहा - "भैया ! बात यह है कि मेरे बच्चों को साँप बार-बार खा जाता है । कुछ उपाय नहीं सूझता, किस प्रकार साँप का नाश किया जाय । तुम्हीं कोई उपाय बताओ ।"

केकड़े ने मन में सोचा, 'यह बगला मेरा जन्मवैरी है, इसे ऐसा उपाय बताऊंगा, जिससे साँप के नाश के साथ-साथ इसका भी नाश हो जाय ।' यह सोचकर वह बोला -

"मामा ! एक काम करो, मांस के कुछ टुकड़े लेकर नेवले के बिल के सामने डाल दो । इसके बाद बहुत से टुकड़े उस बिल से शुरु करके साँप के बिल तक बखेर दो । नेवला उन टुकड़ों को खाता-खाता साँप के बिल तक आ जायगा और वहाँ साँप को भी देखकर उसे मार डालेगा ।"

बगुले ने ऐसा ही किया । नेवले ने साँप को तो खा लिया किन्तु साँप के बाद उस वृक्ष पर रहने वाले बगुलों को भी खा डाला ।

बगुले ने उपाय तो सोचा, किन्तु उसके अन्य दुष्परिणाम नहीं सोचे । अपनी मूर्खता का फल उसे मिल गया ।

मूर्ख मित्र

किसी राजा के राजमहल में एक बन्दर सेवक के रुप में रहता था । वह राजा का बहुत विश्वास-पात्र और भक्त था । अन्तःपुर में भी वह बेरोक-टोक जा सकता था ।

एक दिन जब राजा सो रहा था और बन्दर पङ्खा झल रहा था तो बन्दर ने देखा, एक मक्खी बार-बार राजा की छाती पर बैठ जाती थी । पंखे से बार-बार हटाने पर भी वह मानती नहीं थी, उड़कर फिर वहीं बैठी जाती थी ।

बन्दर को क्रोध आ गया । उसने पंखा छोड़ कर हाथ में तलवार ले ली; और इस बार जब मक्खी राजा की छाती पर बैठी तो उसने पूरे बल से मक्खी पर तलवार का हाथ छोड़ दिया । मक्खी तो उड़ गई, किन्तु राजा की छाती तलवार की चोट से दो टुकड़े हो गई । राजा मर गया ।

"इसीलिए मूर्ख मित्र की अपेक्षा विद्वान् शत्रु को अच्छा ज्यादा अच्छा होता है।"

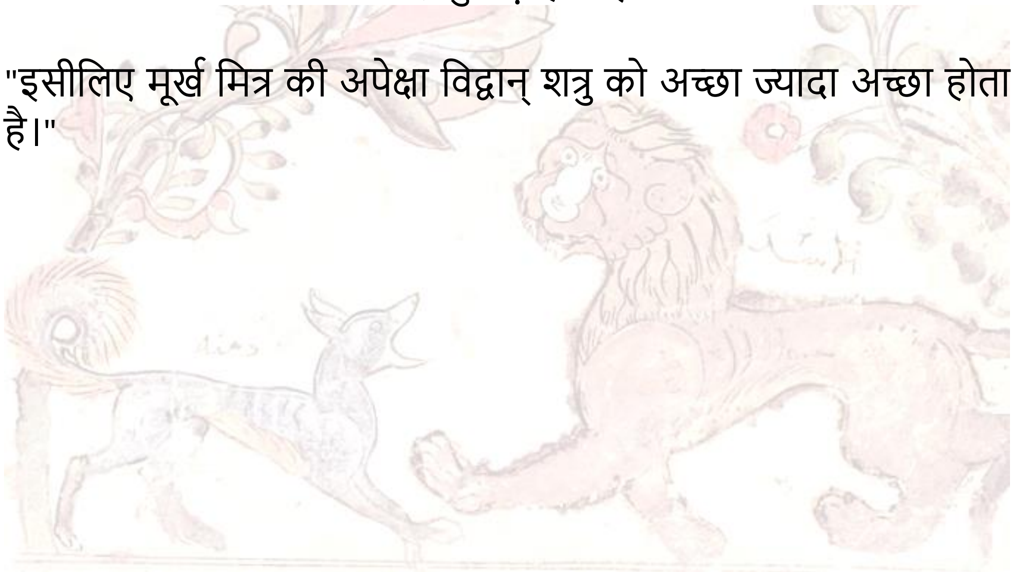

मित्र सम्प्राप्ति

साधु और चूहा

मलयगिरी नामक एक दक्षिणी शहर के पास भगवान शिव का एक मंदिर था। वहां एक पवित्र ऋषि रहते थे और मंदिर की देखभाल करते थे। वे भिक्षा के लिए शहर में हर रोज जाते थे, और भोजन के लिए शाम को वापस आते थे। वे अपनी आवश्यकता से अधिक एकत्र कर लेते थे और बाकि का बर्तन में डाल कर गरीब मजदूरों में बाँट देते थे जो बदले में मंदिर की सफाई करते थे और उसे सजावट का काम किया करते थे।

उसी आश्रम में एक चूहा भी अपने बिल में रहता था और हर रोज कटोरे में से कुछ न कुछ भोजन चुरा लेता था।

जब साधु को एहसास हुआ कि एक चूहा भोजन चोरी करता है तो उन्होंने इसे रोकने के लिए सभी तरह की कोशिशें की। उन्होंने कटोरे को काफी उचाई पर रखा ताकि चूहा वहां तक पहुँच न सके, और यहां तक कि एक छड़ी के साथ चूहे को मार भगाने की भी कोशिश की, लेकिन चूहा किसी भी तरह कटोरे तक पहुंचने का रास्ता ढूंढ लेता और कुछ भोजन चुरा लेता था।

एक दिन, एक भिक्षुक मंदिर की यात्रा करने के लिए आये थे। लेकिन साधु का ध्यान तो चूहे को डंडे से मारने में था और वे भिक्षुक से मिल भी नहीं पाए, इसे अपना अपमान समझ भिक्षुक क्रोधित होकर बोले "आपके आश्रम में फिर कभी नहीं आऊंगा क्योंकि लगता है मुझसे बात करने के अलावा आपको अन्य काम ज्यादा महत्वपूर्ण लग रहा है।"

साधु विनम्रतापूर्वक चूहे से जुडी अपनी परेशानियों के बारे में भिक्षुक को बताते हैं, कि कैसे चूहा उनके पास से भोजन किसी न किसी तरह से चुरा ही लेता है, "यह चूहा किसी भी बिल्ली या बन्दर को हरा सकता है अगर

बात मेरे कटोरे तक पहुंचने कि हो तो! मैंने हर कोशिशें की हैं लेकिन वो हर बार किसी न किसी तरीके से भोजन चुरा ही लेता है।

भिक्षुक ने साधु की परेशानियों को समझा, और सलाह दी, "चूहे में इतनी शक्ति, आत्मविश्वास और चंचलता के पीछे अवश्य ही कुछ न कुछ कारण होगा"।

मुझे यकीन है कि इसने बहुत सारा भोजन जमा कर रखा होगा और यही कारण है कि चूहा अपने आप को बड़ा महसूस करता है और इसी से उसे ऊँचा कूदने कि शक्ति मिलती है। चूहा जानता है कि उसके पास कुछ खोने के लिए नहीं है इसलिए वो डरता नहीं है।"

इस प्रकार, साधू और भिक्षुक निष्कर्ष निकालते है कि अगर वे चूहे के बिल तक पहुंचने में सफल होते है तो वे चूहे के भोजन के भंडार तक पहुंचने में सक्षम हो जाएंगे। उन्होंने फैसला किया कि अगली सुबह वो चूहे का पीछा करेंगे और उसके बिल तक पहुंच जाएंगे।

अगली सुबह वो चूहे का पीछा करते हैं और उसके बिल के प्रवेश द्वार तक पहुंच जाते है। जब वो खुदाई शुरू करते है तो देखते हैं की चूहे ने अनाज का एक विशाल भंडार बना रखा है, फ़ौरन ही साधु ने सारा चुराया गया भोजन एकत्र करके मंदिर में लिवा ले जाते है।

वापस आने पर अपना सारा अनाज गायब देख चूहा बहुत दुखी हुआ और उसे इस बात से गहरा झटका लगा और उसने सारा आत्मविश्वास खो दिया।

अब चूहे के पास भोजन का भंडार नहीं था, फिर भी उसने फैसला किया कि वो फिर से रात को कटोरे से भोजन चुराएगा। लेकिन जब उसने कटोरे तक पहुँचने की कोशिश की, तब वह धड़ाम से नीच गिर गया और उसे यह एहसास हुआ कि अब न तो उसके पर शक्ति है, और न ही आत्मविश्वास।

उसी समय साधु ने भी छड़ी से उसपर हमला किया। किसी तरह चूहे ने अपनी जान बचायी और भागने में कामियाब रहा और फिर वापस मंदिर कभी नहीं आया।

गजराज और मूषकराज की कथा

प्राचीन काल में एक नदी के किनारे बसा नगर व्यापार का केन्द्र था। फिर आए उस नगर के बुरे दिन, जब एक वर्ष भारी वर्षा हुई। नदी ने अपना रास्ता बदल दिया।

लोगों के लिए पीने का पानी न रहा और देखते ही देखते नगर वीरान हो गया अब वह जगह केवल चूहों के लायक रह गई। चारों ओर चूहे ही चूहे नजर आने लगे। चूहो का पूरा साम्राज्य ही स्थापित हो गया। चूहों के उस साम्राज्य का राजा बना मूषकराज चूहा। चूहों का भाग्य देखो, उनके बसने के बाद नगर के बाहर जमीन से एक पानी का स्त्रोत फूट पडा और वह एक बडा जलाशय बन गया। नगर से कुछ ही दूर एक घना जंगल था। जंगल में अनगिनत हाथी रहते थे। उनका राजा गजराज नामक एक विशाल हाथी था। उस जंगल क्षेत्र में भयानक सूखा पडा। जीव-जन्तु पानी की तलाश में इधर-उधर मारे-मारे फिरने लगे। भारी भरकम शरीर वाले हाथियों की तो दुर्दशा हो गई।

हाथियों के बच्चे प्यास से व्याकुल होकर चिल्लाने व दम तोडने लगे। गजराज खुद सूखे की समस्या से चिंतित था और हाथियों का कष्ट जानता था। एक दिन गजराज की मित्र चील ने आकर खबर दी कि खंडहर बने नगर के दूसरी ओर एक जलाशय हैं। गजराज ने सबको तुरंत उस जलाशय की ओर चलने का आदेश दिया। सैकडों हाथी प्यास बुझाने डोलते हुए चल पडे। जलाशय तक पहुंचने के लिए उन्हें खंडहर बने नगर के बीच से गुजरना पडा।

हाथियों के हजारों पैर चूहों को रौंदते हुए निकल गए। हजारों चूहे मारे गए। खंडहर नगर की सडकें चूहों के खून-मांस के कीचड से लथपथ हो गई। मुसीबत यहीं खत्म नहीं हुई। हाथियों का दल फिर उसी रास्ते से लौटा। हाथी रोज उसी मार्ग से पानी पीने जाने लगे।

काफी सोचने-विचारने के बाद मूषकराज के मंत्रियों ने कहा “महाराज, आपको ही जाकर गजराज से बात करनी चाहिए। वह दयालु हाथी हैं।”

मूषकराज हाथियों के वन में गया। एक बडे पेड के नीचे गजराज खडा था।

मूषकराज उसके सामने के बडे पत्थर के ऊपर चढा और गजराज को नमस्कार करके बोला

“गजराज को मूषकराज का नमस्कार। हे महान हाथी, मैं एक निवेदन करना चाहता हूं।”

आवाज गजराज के कानों तक नहीं पहुंच रही थी। दयालु गजराज उसकी बात सुनने के लिए नीचे बैठ गया और अपना एक कान पत्थर पर चढे मूषकराज के निकट ले जाकर बोला “नन्हें मियां, आप कुछ कह रहे थे। कृपया फिर से कहिए।”

मूषकराज बोला “हे गजराज, मुझे चूहा कहते हैं। हम बडी संख्या में खंडहर बनी नगरी में रहते हैं। मैं उनका मूषकराज हूं। आपके हाथी रोज जलाशय तक जाने के लिए नगरी के बीच से गुजरते हैं। हर बार उनके पैरों तले कुचले जाकर हजारों चूहे मरते हैं। यह मूषक संहार बंद न हुआ तो हम नष्ट हो जाएंगे।”

गजराज ने दुख भरे स्वर में कहा “मूषकराज, आपकी बात सुन मुझे बहुत शोक हुआ। हमें ज्ञान ही नहीं था कि हम इतना अनर्थ कर रहे हैं। हम नया रास्ता ढूढ लेंगे।”

मूषकराज कृतज्ञता भरे स्वर में बोला "गजराज, आपने मुझ जैसे छोटे जीव की बात ध्यान से सुनी। आपका धन्यवाद। गजराज, कभी हमारी जरुरत पडे तो याद जरुर कीजिएगा।"

गजराज ने सोचा कि यह नन्हा जीव हमारे किसी काम क्या आएगा। सो उसने केवल मुस्कुराकर मूषकराज को विदा किया। कुछ दिन बाद पडौसी देश के राजा ने सेना को मजबूत बनाने के लिए उसमें हाथी शामिल करने का निर्णय लिया। राजा के लोग हाथी पकडने आए। जंगल में आकर वे चुपचाप कई प्रकार के जाल बिछाकर चले जाते हैं। सैकडों हाथी पकड लिए गए। एक रात हाथियों के पकडे जाने से चिंतित गजराज जंगल में घूम रहे थे कि उनका पैर सूखी पत्तियों के नीचे छल से दबाकर रखे रस्सी के फंदे में फंस जाता हैं। जैसे ही गजराज ने पैर आगे बढाया रस्सा कस गया। रस्से का दूसरा सिरा एक पेड के मोटे तने से मजबूती से बंधा था। गजराज चिंघाडने लगा। उसने अपने सेवकों को पुकारा, लेकिन कोई नहीं आया।कौन फंदे में फंसे हाथी के निकट आएगा? एक युवा जंगली भैंसा गजराज का बहुत आदर करता था। जब वह भैंसा छोटा था तो एक बार वह एक गड्ढे में जा गिरा था। उसकी चिल्लाहट सुनकर गजराज ने उसकी जाअन बचाई थी। चिंघाड सुनकर वह दौडा और फंदे में फंसे गजराज के पास पहुंचा। गजराज की हालत देख उसे बहुत धक्का लगा।

वह चीखा "यह कैसा अन्याय हैं? गजराज, बताइए क्या करुं? मैं आपको छुडाने के लिए अपनी जान भी दे सकता हूं।"

गजराज बोले "बेटा, तुम बस दौडकर खंडहर नगरी जाओ और चूहों के राजा मूषकराजा को सारा हाल बताना। उससे कहना कि मेरी सारी आस टूट चुकी हैं।

भैंसा अपनी पूरी शक्ति से दौडा-दौडा मूषकराज के पास गया और सारी बात बताई। मूषकराज तुरंत अपने बीस-तीस सैनिकों के साथ भैंसे की

पीठ पर बैठा और वो शीघ्र ही गजराज के पास पहुंचे। चूहे भैंसे की पीठ पर से कूदकर फंदे की रस्सी कुतरने लगे। कुछ ही देर में फंदे की रस्सी कट गई व गजराज आजाद हो गए।

लालच का फल बुरा – सूअर, शिकारी और गीदड़ की कथा

एक बार की बात है एक निर्धन ब्राह्मण परिवार रहता था, एक समय उनके यहाँ कुछ अतिथि आये, घर में खाने पीने का सारा सामान ख़त्म हो चुका था, इसी बात को लेकर ब्राह्मण और ब्राह्मण-पत्नी में यह बातचीत हो रही थी:

ब्राह्मण - "कल सुबह कर्क-संक्रान्ति है, भिक्षा के लिये मैं दूसरे गाँव जाऊँगा । वहाँ एक ब्राह्मण सूर्यदेव की तृप्ति के लिए कुछ दान करना चाहता है ।"

पत्नी- "तुझे तो भोजन योग्य अन्न कमाना भी नहीं आता । तेरी पत्नी होकर मैंने कभी सुख नहीं भोगा, मिष्टान्न नहीं खाये, वस्त्र और आभूषणों को तो बात ही क्या कहनी ?"

ब्राह्मण- "देवी ! तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए । अपनी इच्छा के अनुरुप धन किसी को नहीं मिलता । पेट भरने योग्य अन्न तो मैं भी ले ही आता हूँ । इससे अधिक की तृष्णा का त्याग कर दो । अति तृष्णा के चक्कर में मनुष्य के माथे पर शिखा हो जाती है ।"

ब्राह्मणी ने पूछा -"यह कैसे ?"

तब ब्राह्मण ने सूअर,शिकारी और गीदड़ की यह कथा सुनाई:-

एक दिन एक शिकारी शिकार की खोज में जंगल की ओर गया । जाते-जाते उसे वन में काले अंजन के पहाड़ जैसा काला बड़ा सूअर दिखाई

दिया। उसे देखकर उसने अपने धनुष की प्रत्यंचा को कानों तक खींचकर निशाना मारा । निशाना ठीक स्थान पर लगा । सूअर घायल होकर शिकारी की ओर दौड़ा। शिकारी भी तीखे दाँतों वाले सूअर के हमले से गिरकर घायल होगया । उसका पेट फट गया । शिकारी और शिकार दोनों का अन्त हो गया।

इस बीच एक भटकता और भूख से तड़पता गीदड़ वहाँ आ निकला। वहाँ सूअर और शिकारी, दोनों को मरा देखकर वह सोचने लगा, "आज दैववश बड़ा अच्छा भोजन मिला है । कई बार बिना विशेष उद्यम के ही अच्छा भोजन मिल जाता है। इसे पूर्वजन्मों का फल ही कहना चाहिए।"

यह सोचकर वह मृत लाशों के पास जाकर पहले छोटी चीजें खाने लगा। उसे याद आगया कि अपने धन का उपयोग मनुष्य को धीरे-धीरे ही करना चाहिये; इसका प्रयोग रसायन के प्रयोग की तरह करना उचित है । इस तरह अल्प से अल्प धन भी बहुत काल तक काम देता है । अतः इनका भोग मैं इस रीतिसे करूँगा कि बहुत दिन तक इनके उपभोग से ही मेरी प्राणयात्रा चलती रहे।

यह सोचकर उसने निश्चय किया कि वह पहले धनुष की डोरी को खायगा। उस समय धनुष की प्रत्यंचा चढ़ी हुई थी; उसकी डोरी कमान के दोनों सिरों पर कसकर बँधी हुई थी। गीदड़ ने डोरी को मुख में लेकर चबाया। चबाते ही वह डोरी बहुत वेग से टूट गई; और धनुष के कोने का एक सिरा उसके माथे को भेद कर ऊपर निकला आया, मानो माथे पर शिखा निकल आई हो। इस प्रकार घायल होकर वह गीदड़ भी वहीं मर गया।

ब्राह्मण ने कहा "इसीलिये मैं कहता हूँ कि अतिशय लोभ से माथे पर शिखा हो जाती है।"

ब्राह्मणी ने ब्राह्मण की यह कहानी सुनने के बाद कहा "यदि यही बात है तो मेरे घर में थोड़े से तिल पड़े हैं । उनका शोधन करके कूट छाँटकर अतिथि को खिला देती हूँ।"

ब्राह्मण उसकी बात से सन्तुष्ट होकर भिक्षा के लिये दूसरे गाँव की ओर चल दिया । ब्राह्मणी ने भी अपने वचनानुसार घर में पड़े तिलों को छाँटना शुरु कर दिया । छाँट-पछोड़ कर जब उसने तिलों को सुखाने के लिये धूप में फैलाया तो एक कुत्ते ने उन तिलों को मूत्र से खराब कर दिया । ब्राह्मणी बड़ी चिन्ता में पड़ गई । यही तिल थे, जिन्हें पकाकर उसने अतिथि को भोजन देना था । बहुत विचार के बाद उसने सोचा कि अगर वह इन शोधित तिलों के बदले अशोधित तिल माँगेगी तो कोई भी दे देगा । इनके उच्छिष्ट होने का किसी को पता ही नहीं लगेगा । यह सोचकर वह उन तिलों को छाज में रखकर घर-घर घूमने लगी और कहने लगी:-"कोई इन छँटे हुए तिलों के स्थान पर बिना छँटे तिल देदे ।"

अचानक यह हुआ कि ब्राह्मणी तिलों को बेचने एक घर में पहुँच गई, और कहने लगी कि "बिना छँटे हुए तिलों के स्थान पर छँटे हुए तिलों को ले लो ।" उस घर की गृहपत्नी जब यह सौदा करने जा रही थी तब उसके लड़के ने, जो अर्थशास्त्र पढ़ा हुआ था, कहा:

"माता ! इन तिलों को मत लो। कौन पागल होगा जो बिना छँटे तिलों को लेकर छँटे हुए तिल देगा । यह बात निष्कारण नहीं हो सकती । अवश्यमेव इन छँटे तिलों में कोई दोष होगा ।"

पुत्र के कहने से माता ने यह सौदा नहीं किया क्योंकि लालच का फल हेमशा बुरा होता है ।

जैसे को तैसा

किसी नगर में एक व्यापारी का पुत्र रहता था। दुर्भाग्य से उसकी सारी संपत्ति समाप्त हो गई। इसलिए उसने सोचा कि किसी दूसरे देश में जाकर व्यापार किया जाए। उसके पास एक भारी और मूल्यवान तराजू था।

उसका वजन बीस किलो था। उसने अपने तराजू को एक सेठ के पास धरोहर रख दिया और व्यापार करने दूसरे देश चला गया।

कई देशों में घूमकर उसने व्यापार किया और खूब धन कमाकर वह घर वापस लौटा। एक दिन उसने सेठ से अपना तराजू माँगा। सेठ बेईमानी पर उतर गया। वह बोला,

'भाई तुम्हारे तराजू को तो चूहे खा गए।' व्यापारी पुत्र ने मन-ही-मन कुछ सोचा और सेठ से बोला-

'सेठ जी, जब चूहे तराजू को खा गए तो आप कर भी क्या कर सकते हैं! मैं नदी में स्नान करने जा रहा हूँ। यदि आप अपने पुत्र को मेरे साथ नदी तक भेज दें तो बड़ी कृपा होगी।'

सेठ मन-ही-मन भयभीत था कि व्यापारी का पुत्र उस पर चोरी का आरोप न लगा दे। उसने आसानी से बात बनते न देखी तो अपने पुत्र को उसके साथ भेज दिया।स्नान करने के बाद व्यापारी के पुत्र ने लड़के को एक गुफ़ा में छिपा दिया। उसने गुफा का द्वार चट्टान से बंद कर दिया और अकेला ही सेठ के पास लौट आया।

सेठ ने पूछा, 'मेरा बेटा कहाँ रह गया?' इस पर व्यापारी के पुत्र ने उत्तर दिया, 'जब हम नदी किनारे बैठे थे तो एक बड़ा सा बाज आया और झपट्टा मारकर आपके पुत्र को उठाकर ले गया।' सेठ क्रोध से भर गया।

उसने शोर मचाते हुए कहा-'तुम झूठे और मक्कार हो। कोई बाज इतने बड़े लड़के को उठाकर कैसे ले जा सकता है? तुम मेरे पुत्र को वापस ले आओ नहीं तो मैं राजा से तुम्हारी शिकायत करूँगा'

व्यापारी पुत्र ने कहा, 'आप ठीक कहते हैं।' दोनों न्याय पाने के लिए राजदरबार में पहुँचे।

सेठ ने व्यापारी के पुत्र पर अपने पुत्र के अपहरण का आरोप लगाया। न्यायाधीश ने कहा, 'तुम सेठ के बेटे को वापस कर दो।'

इस पर व्यापारी के पुत्र ने कहा कि 'मैं नदी के तट पर बैठा हुआ था कि एक बड़ा-सा बाज झपटा और सेठ के लड़के को पंजों में दबाकर उड़ गया। मैं उसे कहाँ से वापस कर दूँ?'

न्यायाधीश ने कहा, 'तुम झूठ बोलते हो। एक बाज पक्षी इतने बड़े लड़के को कैसे उठाकर ले जा सकता है?'

इस पर व्यापारी के पुत्र ने कहा, 'यदि बीस किलो भार की मेरी लोहे की तराजू को साधारण चूहे खाकर पचा सकते हैं तो बाज पक्षी भी सेठ के लड़के को उठाकर ले जा सकता है।'

न्यायाधीश ने सेठ से पूछा, 'यह सब क्या मामला है?'

अंततः सेठ ने स्वयं सारी बात राजदरबार में उगल दी। न्यायाधीश ने व्यापारी के पुत्र को उसका तराजू दिलवा दिया और सेठ का पुत्र उसे वापस मिल गया।

अभागा बुनकर

एक नगर में सोमिन नाम का जुलाहा रहता था । विविध प्रकार के रंगीन और सुन्दर वस्त्र बनाने के बाद भी उसे भोजन-वस्त्र मात्र से अधिक धन कभी प्राप्त नहीं होता था । अन्य जुलाहे मोटा-सादा कपड़ा बुनते हुए धनी हो गये थे । उन्हें देखकर एक दिन सोमिन ने अपनी पत्नी से कहा:--"प्रिये ! देखो, मामूली कपड़ा बुनने वाले जुलाहों ने भी कितना धन-वैभव संचित कर लिया है और मैं इतन सुन्दर, उत्कृष्ट वस्त्र बनाते हुए भी आज तक निर्धन ही हूँ । प्रतीत होता है यह स्थान मेरे लिये भाग्यशाली नहीं है; अतः विदेश जाकर धनोपार्जन करुँगा ।"

सोमिन की -पत्नी ने कहा:--"प्रियतम ! विदेश में धनोपार्जन की कल्पना मिथ्या स्वप्न से अधिक नहीं । धन की प्राप्ति होनी हो तो स्वदेश में ही हो जाती है । न होनी हो तो हथेली में आया धन भी नष्ट हो जाता है । अतः यहीं रहकर व्यवसाय करते रहो, भाग्य में लिखा होगा तो यहीं धन की वर्षा हो जायगी ।"

सोमिन "भाग्य-अभाग्य की बातें तो कायर लोग करते हैं । लक्ष्मी उद्योगी और पुरुषार्थी शेर-नर को ही प्राप्त होती है । शेर को भी अपने भोजन के लिये उद्यम करना पड़ता है । मैं भी उद्यम करुँगा; विदेश जाकर धन-संचय का यत्न करुँगा ।"

यह कहकर सोमिन वर्धमानपुर चला गया । वहाँ तीन वर्षों में अपने कौशल से ३०० सोने की मुहरें लेकर वह घर की ओर चल दिया । रास्ता लम्बा था । आधे रास्ते में ही दिन ढल गया, शाम हो गई । आस-पास कोई घर नहीं था । एक मोटे वृक्ष की शाखा के ऊपर चढ़कर रात बिताई । सोते-सोते स्वप्न आया कि दो भयंकर आकृति के पुरुष आपस में बात कर रहे हैं । एक ने कहा-"हे पौरुष ! तुझे क्या मालूम नहीं है कि सोमिन के पास भोजन-वस्त्र से अधिक धन नहीं रह सकता; तब तूने इसे ३०० मुहरें क्यों दीं ?" दूसरा बोला-"हे भाग्य ! मैं तो प्रत्येक पुरुषार्थी को एक बार उसका फल दूंगा ही । उसे उसके पास रहने देना या नहीं रहने देना तेरे अधीन है।"

स्वप्न के बाद सोमिन की नींद खुली तो देखा कि मुहरों का पात्र खाली था । इतने कष्टों से संचित धन के इस तरह लुप्त हो जाने से सोमिन बड़ा दुःखी हुआ, और सोचने लगा-"अपनी पत्नी को कौनसा मुख दिखाऊँगा, मित्र क्या कहेंगे ?" यह सोचकर वह फिर वर्धमानपुर को ही वापिस आ गया । वहाँ दित-रात घोर परिश्रम करके उसने वर्ष भर में ही ५०० मुहरें जमा करलीं । उन्हें लेकर वह घर की ओर जा रहा था कि फिर आधे रास्ते में रात पड़ गई । इस बार वह सोने के लिये ठहरा नहीं; चलता ही गया । किन्तु चलते-चलते ही उसने फिर उन दोनों -पौरुष और भाग्य -को पहले की तरह बात-चीत करते सुना । भाग्य ने फिर वही बात कही कि -"हे

पौरुष ! क्या तुझे मालूम नहीं कि सोमिन के पास भोजन वस्त्र से अधिक धन नहीं रह सकता । तब, उसे तूने ५०० मुहरें क्यों दीं ?" पौरुष ने वही

उत्तर दिया -"हे भाग्य ! मैं तो प्रत्येक व्यवसायी को एक बार उसका फल दूंगा ही, इससे आगे तेरे अधीन है कि उसके पास रहने दे या छीन ले ।" इस बात-चीत के बाद सोमिन ने जब अपनी मुहरों वाली गठरी देखी तो वह मुहरों से खाली थी ।

इस तरह दो बार खाली हाथ होकर सोमिन का मन बहुत दुःखी हुआ । उसने सोचा "इस धन-हीन जीवन से तो मृत्यु ही अच्छी है । आज इस वृक्ष की टहनी से रस्सी बाँधकर उस पर लटक जाता हूँ और यहीं प्राण दे देता हूँ ।"

गले में फन्दा लगा, उसे टहनी से बाँध कर जब वह लटकने ही वाला था कि उसे आकाश-वाणी हुईः--"सौमिन ! ऐसा दुःसाहस मत कर । मैंने ही तेरा धन चुराया है । तेरे भाग्य में भोजन-वस्त्र मात्र से अधिक धन का उपभोग नहीं लिखा । व्यर्थ के धन-संचय में अपनी शक्तियाँ नष्ट मत कर । घर जाकर सुख से रह । तेरे साहस से तो मैं प्रसन्न हूँ ; तू चाहे तो एक वरदान माँग ले । मैं तेरी इच्छा पूरी करुँगा ।"

सोमिन ने कहा "मुझे वरदान में प्रचुर धन दे दो ।"

अदृष्ट देवता ने उत्तर दिया "धन का क्या उपयोग ? तेरे भाग्य में उसका उपभोग नहीं है । भोग-रहित धन को लेकर क्या करेगा ?"

सोमिन तो धन का भूखा था, बोला "भोग हो या न हो, मुझे धन ही चाहिये । बिना उपयोग या उपभोग के भी धन कि बड़ी महिमा है । संसार में वही पूज्य माना जाता है, जिसके पास धन का संचय हो । कृपण और अकुलीन भी समाज में आदर पाते हैं ।

सोमिन की बात सुनने के बाद देवता ने कहा "यदि यही बात है, धन की इच्छा इतनी ही प्रबल है तो तू फिर वर्धमानपुर चला जा । वहां दो बनियों के पुत्र हैं; एक गुप्तधन, दूसरा उपभुक्त धन । इन दोनों प्रकार के धनों का स्वरुप जानकर तू किसी एक का वरदान मांगना । यदि तू उपभोग की योग्यता के बिना धन चाहेगा तो तुझे गुप्त धन दे दूंगा और यदि खर्च के लिये धन चाहेगा तो उपभुक्त धन दे दूंगा ।"

यह कहकर वह देवता लुप्त हो गया । सोमिन उसके आदेशानुसार फिर वर्धमानपुर पहुँचा । शाम हो गई थी । पूछता-पूछता वह गुप्तधन के घर पर चला गया । घर पर उसका किसी ने सत्कार नहीं किया । इसके विपरीत उसे भला-बुरा कहकर गुप्तधन और उसकी पत्नी ने घर से बाहिर धकेलना चाहा। किन्तु, सोमिन भी अपने संकल्पा का पक्का था। सब के विरुद्ध होते हुए भी वह घर में घुसकर जा बैठा। भोजन के समय उसे गुप्तधन ने रुखीसूखी रोटी दे दी। उसे खाकर वह वहीं सो गया। स्वप्न में उसने फिर वही दोनों देव देखे । वे बातें कर रहे थे । एक कह रहा था "हे पौरुष ! तूने गुप्तधन को भोग्य से इतना अधिक धन क्यों दे दिया कि उसने सोमिन को भी रोटी देदी ।" पौरुष ने उत्तर दिया "मेरा इसमें दोष नहीं । मुझे पुरुष के हाथों धर्म-पालन करवाना ही है, उसका फल देना तेरे अधीन है ।"

दूसरे दिन गुप्तधन पेचिश से बीमार हो गया और उसे उपवास करना पड़ा। इस तरह उसकी क्षतिपूर्त्ति हो गई।

सोमिन अगले दिन सुबह उपभुक्त धन के घर गया । वहां उसने भोजनादि द्वारा उसका सत्कार किया । सोने के लिये सुन्दर शय्या भी दी । सोते-सोते उसने फिर सुना; वही दोनों देव बातें कर रहे थे । एक कह रहा था "हे पौरुष ! इसने सोमिन का सत्कार करते हुए बहुत धन व्यय कर दिया है। अब इसकी क्षतिपूर्त्ति कैसे होगी ?"

दूसरे ने कहा :--"हे भाग्य ! सत्कार के लिये धन व्यय करवाना मेरा धर्म था, इसका फल देना तेरे अधीन है ।"

सुबह होने पर सोमिन ने देखा कि राज-दरबार से एक राज-पुरुष राज-प्रसाद के रुप में धन की भेंट लाकर उपभुक्त धन को दे रहा था।

यह देखकर सोमिन ने विचार किया कि "यह संचय-रहित उपभुक्त धन ही गुप्तधन से श्रेष्ठ है। जिस धन का दान कर दिया जाय या सत्कार्यों में व्यय कर दिया जाय वह धन संचित धन की अपेक्षा बहुत अच्छा होता है।" और सोमिन ने उपभुक्त धन जैसा धन पाने का वरदान ही देवता से माँगा तथा प्रचुर धन पाकर सुखी जीवन व्यतीत करने लगा।

संधि-विग्रह

कौवे और उल्लू के बैर की कथा

एक बार हंस, तोता, बगुला, कोयल, चातक, कबूतर, उल्लू आदि सब पक्षियों ने सभा करके यह सलाह की कि उनका राजा गरुड़ केवल श्री हरि की भक्ति में ही लगा रहता है; व्याधों से प्रजा की रक्षा का कोई उपाय नहीं करता, इसलिये पक्षियों का कोई अन्य राजा चुन लिया जाय । कई दिनों की बैठक के बाद सब ने एक सम्मति से सर्वाङ्ग सुन्दर उल्लू को राजा चुना ।

अभिषेक की तैयारियाँ होने लगीं, विविध तीर्थों से पवित्र जल मँगाया गया, सिंहासन पर रत्न जड़े गए, स्वर्णघट भरे गए, मङ्गल पाठ शुरु हो गया, ब्राह्मणों ने वेद पाठ शुरु कर दिया, नर्तकियों ने नृत्य की तैयारी कर लीं; उलूकराज राज्यसिंहासन पर बैठने ही वाले थे कि कहीं से एक कौवा आ गया ।

कौवे ने सोचा यह समारोह कैसा ? यह उत्सव किस लिए ? पक्षियों ने भी कौवे को देखा तो आश्चर्य में पड़ गए । उसे तो किसी ने बुलाया ही नहीं था। फिर भी, उन्होंने सुन रखा था कि कौआ सब से चतुर कूटराजनीतिज्ञ पक्षी है; इसलिये उस से मन्त्रणा करने के लिये सब पक्षी उसके चारों ओर इकट्ठे हो गए ।

उलूक राज के राज्याभिषेक की बात सुन कर कौवे ने हँसते हुए कहा "यह चुनाव ठीक नहीं हुआ । मोर, हंस, कोयल, सारस, चक्रवाक, शुक आदि सुन्दर पक्षियों के रहते दिवान्ध उल्लू ओर टेढ़ी नाक वाले अप्रियदर्शी पक्षी को राजा बनाना उचित नहीं है। वह स्वभाव से ही रौद्र है और कटुभाषी है। फिर अभी तो गरुड़ राजा बैठा है। एक राजा के रहते दूसरे को राज्यासन देना विनाशक है। पृथ्वी पर एक ही सूर्य होता है; वही अपनी आभा से सारे संसार को प्रकाशित कर देता है। एक से अधिक सूर्य होने

पर प्रलय हो जाती है। प्रलय में बहुत से सूर्य निकल जाते हैं; उन से संसार में विपत्ति ही आती है, कल्याण नहीं होता।

राजा एक ही होता है । उसके नाम-कीर्तन से ही काम बन जाते हैं।

"यदि तुम उल्लू जैसे नीच, आलसी, कायर, व्यसनी और कटुभाषी पक्षी को राजा बनाओगे तो नष्ट हो जाओगे ।

कौवे की बात सुनकर सब पक्षी उल्लू को राज-मुकुट पहनाये बिना चले गये । केवल अभिषेक की प्रतीक्षा करता हुआ उल्लू उसकी मित्र कोयल और कौवा रह गये । उल्लू ने पूछा "मेरा अभिषेक क्यों नहीं हुआ ?"

कोयल ने कहा "मित्र ! एक कौवे ने आकर रंग में भंग कर दिया । शेष सब पक्षी उड़कर चले गये हैं, केवल वह कौवा ही यहाँ बैठा है ।"

तब, उल्लू ने कौवे से कहा:-"दुष्ट कौवे ! मैंने तेरा क्या बिगाड़ा था जो तूने मेरे कार्य में विघ्न डाल दिया । आज से मेरा तेरा वंशपरंपरागत वैर रहेगा।"

यह कहकर उल्लू वहाँ से चला गया । कौवा बहुत चिन्तित हुआ वहीं बैठा रहा । उसने सोचा "मैंने अकारण ही उल्लू से वैर मोल ले लिया। दूसरों के मामलों में हस्तक्षेप करना और कटु सत्य कहना भी दुःखप्रद होता है ।"

यही सोचता-सोचता वह कौवा वहाँ से चला गया । तभी से कौओं और उल्लुओं में स्वाभाविक वैर चला आता है ।

हाथी और चतुर खरगोश

एक वन में 'चतुर्दन्त' नाम का महाकाय हाथी रहता था । वह अपने हाथीदल का मुखिया था । बरसों तक सूखा पड़ने के कारण वहा के सब झील, तलैया, ताल सूख गये, और वृक्ष मुरझा गए । सब हाथियों ने मिलकर अपने गजराज चतुर्दन्त को कहा कि हमारे बच्चे भूख-प्यास से मर गए, जो

शेष हैं मरने वाले हैं। इसलिये जल्दी ही किसी बड़े तालाब की खोज की जाय ।

बहुत देर सोचने के बाद चतुर्दन्त ने कहा-"मुझे एक तालाब याद आया है । वह पातालगङ्गा के जल से सदा भरा रहता है । चलो, वहीं चलें ।" पाँच रात की लम्बी यात्रा के बाद सब हाथी वहाँ पहुँचे । तालाब में पानी था । दिन भर पानी में खेलने के बाद हाथियों का दल शाम को बाहर निकला । तालाब के चारों ओर खरगोशों के अनगिनत बिल थे । उन बिलों से जमीन पोली हो गई थी । हाथियों के पैरों से वे सब बिल टूट-फूट गए। बहुत से खरगोश भी हाथियों के पैरों से कुचले गये । किसी की गर्दन टूट गई, किसी का पैर टूट गया । बहुत से मर भी गये ।

हाथियों के वापस चले जाने के बाद उन बिलों में रहने वाले क्षत-विक्षत, लहू-लुहान खरगोशों ने मिल कर एक बैठक की । उस में स्वर्गवासी खरगोशों की स्मृति में दुःख प्रगट किया गया तथा भविष्य के संकट का उपाय सोचा गया । उन्होंने सोचा- आस-पास अन्यत्र कहीं जल न होने के कारण ये हाथी अब हर रोज इसी तालाब में आया करेंगे और उनके बिलों को अपने पैरों से रौंदा करेंगे । इस प्रकार दो चार दिनों में ही सब खरगोशों का वंशनाश हो जायगा । हाथी का स्पर्श ही इतना भयङ्कर है जितना साँप का सूँघना, राजा का हँसना और मानिनी का मान।

इस संकट से बचाने का उपाय सोचते-सोचते एक ने सुझाव रखा "हमें अब इस स्थान को छोड़ कर अन्य देश में चले जाना चाहिए । यह परित्याग ही सर्वश्रेष्ठ नीति है । एक का परित्याग परिवार के लिये, परिवार का गाँव के लिये, गाँव का शहर के लिये और सम्पूर्ण पृथ्वी का परित्याग अपनी रक्षा के लिए करना पड़े तो भी कर देना चाहिये ।"

किन्तु, दूसरे खरगोशों ने कहा:-"हम तो अपने पिता-पितामह की भूमि को न छोड़ेंगे ।"

कुछ ने उपाय सुझाया कि खरगोशों की ओर से एक चतुर दूत हाथियों के दलपति के पास भेजा जाय । वह उससे यह कहे कि चन्द्रमा में जो खरगोश बैठा है उसने हाथियों को इस तालाब में आने से मना किया है । संभव है चन्द्रमास्थित खरगोश की बात को वह मान जाय ।"

बहुत विचार के बाद लम्बकर्ण नाम के खरगोश को दूत बना कर हाथियों के पास भेजा गया । लम्बकर्ण भी तालाब के रास्ते में एक ऊँचे टीले पर बैठ गया; और जब हाथियों का झुण्ड वहाँ आया तो वह बोला:-"यह तालाब चाँद का अपना तालाब है । यह मत आया करो ।"

गजराज:-"तू कौन है ?"

लम्बकर्ण:-"मैं चाँद में रहने वाला खरगोश हूँ । भगवान् चन्द्र ने मुझे तुम्हारे पास यह कहने के लिये भेजा है कि इस तालाब में तुम मत आया करो ।"

गजराज ने कहा:-"जिस भगवान् चन्द्र का तुम सन्देश लाए हो वह इस समय कहाँ है ?"

लम्बकर्ण:--"इस समय वह तालाब में हैं। कल तुम ने खरगोशों के बिलों का नाश कर दिया था । आज वे खरगोशों की विनति सुनकर यहाँ आये हैं। उन्हीं ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है ।"

गजराज:-"ऐसा ही है तो मुझे उनके दर्शन करा दो । मैं उन्हें प्रणाम करके वापस चला जाऊँगा ।"

लम्बकर्ण अकेले गजराज को लेकर तालाब के किनारे पर ले गया। तालाब में चाँद की छाया पड़ रही थी। गजराज ने उसे ही चाँद समझ कर प्रणाम किया और लौट पड़ा। उस दिन के बाद कभी हाथियों का दल तालाब के किनारे नहीं आया ।

धूर्त बिल्ली का न्याय

एक जंगल में विशाल वृक्ष के तने में एक खोल के अन्दर कपिंजल नाम का तीतर रहता था । एक दिन वह तीतर अपने साथियों के साथ बहुत दूर के खेत में धान की नई-नई कोंपलें खाने चला गया।

बहुत रात बीतने के बाद उस वृक्ष के खाली पड़े खोल में 'शीघ्रगो' नाम का खरगोश घुस आया और वहीँ रहने रहने लगा।

कुछ दिन बाद कपिंजल तीतर अचानक ही आ गया । धान की नई-नई कोंपले खाने के बाद वह खूब मोटा-ताजा हो गया था । अपनी खोल में आने पर उसने देखा कि वहाँ एक खरगोश बैठा है । उसने खरगोश को अपनी जगह खाली करने को कहा ।

खरगोश भी तीखे स्वभाव का था; बोला :-"यह घर अब तेरा नहीं है । वापी, कूप, तालाब और वृक्ष के घरों का यही नियम है कि जो भी उनमें बसेरा करले उसका ही वह घर हो जाता है । घर का स्वामित्व केवल मनुष्यों के लिये होता है, पक्षियों के लिये गृहस्वामित्व का कोई विधान नहीं है ।"

झगड़ा बढ़ता गया । अन्त में, कर्पिजल ने किसी भी तीसरे पंच से इसका निर्णय करने की बात कही । उनकी लड़ाई और समझौते की बातचीत को एक जंगली बिल्ली सुन रही थी। उसने सोचा, मैं ही पंच बन जाऊँ तो कितना अच्छा है; दोनों को मार कर खाने का अवसर मिल जायगा ।

यह सोच हाथ में माला लेकर सूर्य की ओर मुख कर के नदी के किनारे कुशासन बिछाकर वह आँखें मूंद बैठ गयी और धर्म का उपदेश करने लगी।

उसके धर्मोपदेश को सुनकर खरगोश ने कहा:--"यह देखो ! कोई तपस्वी बैठा है, इसी को पंच बनाकर पूछ लें ।"

तीतर बिल्ली को देखकर डर गया; दूर से बोला:-"मुनिवर ! तुम हमारे झगड़े का निपटारा कर दो । जिसका पक्ष धर्म-विरुद्ध होगा उसे तुम खा लेना ।"

यह सुन बिल्ली ने आँख खोली और कहा:-- "राम-राम ! ऐसा न कहो । मैंने हिंसा का नारकीय मार्ग छोड़ दिया है । अतः मैं धर्म-विरोधी पक्ष की भी हिंसा नहीं करुँगी । हाँ, तुम्हारा निर्णय करना मुझे स्वीकार है। किन्तु, मैं वृद्ध हूँ; दूर से तुम्हारी बात नहीं सुन सकती, पास आकर अपनी बात कहो ।"

बिल्ली की बात पर दोनों को विश्वास हो गया; दोनों ने उसे पंच मान लिया, और उसके पास आगये । उसने भी झपट्टा मारकर दोनों को एक साथ ही पंजों में दबोच लिया ।

बकरा, ब्राह्मण और तीन ठग

किसी गांव में सम्भुदयाल नामक एक ब्राह्मण रहता था। एक बार वह अपने यजमान से एक बकरा लेकर अपने घर जा रहा था। रास्ता लंबा और सुनसान था। आगे जाने पर रास्ते में उसे तीन ठग मिले। ब्राह्मण के कंधे पर बकरे को देखकर तीनों ने उसे हथियाने की योजना बनाई।

एक ने ब्राह्मण को रोककर कहा, “पंडित जी यह आप अपने कंधे पर क्या उठा कर ले जा रहे हैं। यह क्या अनर्थ कर रहे हैं? ब्राह्मण होकर कुत्ते को कंधों पर बैठा कर ले जा रहे हैं।”

ब्राह्मण ने उसे झिड़कते हुए कहा, “अंधा हो गया है क्या? दिखाई नहीं देता यह बकरा है।”

पहले ठग ने फिर कहा, “खैर मेरा काम आपको बताना था। अगर आपको कुत्ता ही अपने कंधों पर ले जाना है तो मुझे क्या? आप जानें और आपका काम।”

थोड़ी दूर चलने के बाद ब्राह्मण को दूसरा ठग मिला। उसने ब्राह्मण को रोका और कहा, “पंडित जी क्या आपको पता नहीं कि उच्चकुल के लोगों को अपने कंधों पर कुत्ता नहीं लादना चाहिए।”

पंडित उसे भी झिड़क कर आगे बढ़ गया। आगे जाने पर उसे तीसरा ठग मिला।

उसने भी ब्राह्मण से उसके कंधे पर कुत्ता ले जाने का कारण पूछा। इस बार ब्राह्मण को विश्वास हो गया कि उसने बकरा नहीं बल्कि कुत्ते को अपने कंधे पर बैठा रखा है।

थोड़ी दूर जाकर, उसने बकरे को कंधे से उतार दिया और आगे बढ़ गया। इधर तीनों ठग ने उस बकरे को मार कर खूब दावत उड़ाई।

इसीलिए कहते हैं कि किसी झूठ को बार-बार बोलने से वह सच की तरह लगने लगता है।

अतः अपने दिमाग से काम लें और अपने आप पर विश्वास करें।

कबूतर का जोड़ा और शिकारी

एक जगह एक लोभी और निर्दय व्याध रहता था । पक्षियों को मारकर खाना ही उसका काम था । इस भयङ्कर काम के कारण उसके प्रियजनों ने भी उसका त्याग कर दिया था । तब से वह अकेला ही, हाथ में

जाल और लाठी लेकर जङ्गलों में पक्षियों के शिकार के लिये घूमा करता था ।

एक दिन उसके जाल में एक कबूतरी फँस गई । उसे लेकर जब वह अपनी कुटिया की ओर चला तो आकाश बादलों से घिर गया । मूसलधार वर्षा होने लगी । सर्दी से ठिठुर कर व्याध आश्रय की खोज करने लगा । थोड़ी दूरी पर एक पीपल का वृक्ष था । उसके खोल में घुसते हुए उसने कहा:-"यहाँ जो भी रहता है, मैं उसकी शरण जाता हूँ । इस समय जो मेरी सहायता करेगा उसका जन्मभर ऋणी रहूँगा ।"

उस खोल में वही कबूतर रहता था जिसकी पत्नी को व्याध ने जाल में फँसाया था । कबूतर उस समय पत्नी के वियोग से दुःखी होकर विलाप कर रहा था । पति को प्रेमातुर पाकर कबूतरी का मन आनन्द से नाच उठा । उसने मन ही मन सोचा:-'मेरे धन्य भाग्य हैं जो ऐसा प्रेमी पति मिला है। पति का प्रेम ही पत्नी का जीवन है । पति की प्रसन्नता से ही स्त्री-जीवन सफल होता है । मेरा जीवन सफल हुआ ।' यह विचार कर वह पति से बोली:-

"पतिदेव ! मैं तुम्हारे सामने हूँ । इस व्याध ने मुझे बाँध लिया है । यह मेरे पुराने कर्मों का फल है । हम अपने कर्मफल से ही दुःख भोगते हैं । मेरे बन्धन की चिन्ता छोड़कर तुम इस समय अपने शरणागत अतिथि की सेवा करो । जो जीव अपने अतिथि का सत्कार नहीं करता उसके सब पुण्य छूटकर अतिथि के साथ चले जाते हैं और सब पाप वहीं रह जाते हैं ।"

पत्नी की बात सुन कर कबूतर ने व्याध से कहा:-"चिन्ता न करो वधिक ! इस घर को भी अपना ही जानो । कहो,मैं तुम्हारी कौन सी सेवा कर सकता हूँ ?"

व्याध:-"मुझे सर्दी सता रही है, इसका उपाय कर दो ।"

कबूतर ने लकड़ियाँ इकठ्ठी करके जला दीं । और कहा:-"तुम आग सेक कर सर्दी दूर कर लो।"

कबूतर को अब अतिथि-सेवा के लिये भोजन की चिन्ता हुई । किन्तु, उसके घोंसले में तो अन्न का एक दाना भी नहीं था । बहुत सोचने के बाद उसने अपने शरीर से ही व्याध की भूख मिटाने का विचार किया। यह सोच कर वह महात्मा कबूतर स्वयं जलती आग में कूद पड़ा । अपने शरीर का बलिदान करके भी उसने व्याध के तर्पण करने का प्रण पूरा किया ।

व्याध ने जब कबूतर का यह अद्‌भुत बलिदान देखा तो आश्चर्य में डूब गया । उसकी आत्मा उसे धिक्कारने लगी । उसी क्षण उसने कबूतरी को जाल से निकाल कर मुक्त कर दिया और पक्षियों को फँसाने के जाल व अन्य उपकरणों को तोड़-फोड़ कर फैंक दिया ।

कबूतरी अपने पति को आग में जलता देखकर विलाप करने लगी । उसने सोचा:-"अपने पति के बिना अब मेरे जीवन का प्रयोजन ही क्या है ? मेरा संसार उजड़ गया, अब किसके लिये प्राण धारण करूँ ?" यह सोच कर वह पतिव्रत भी आग में कूद पड़ी । इन दोंनों के बलिदान पर आकाश से पुष्पवर्षा हुई । व्याध ने भी उस दिन से प्राणी-हिंसा छोड़ दी ।

ब्राह्मण और सर्प की कथा

किसी नगर में हरिदत्त नाम का एक ब्राह्मण निवास करता था। उसकी खेती साधारण ही थी, अतः अधिकांश समय वह खाली ही रहता था। एक बार ग्रीष्म ऋतु में वह इसी प्रकार अपने खेत पर वृक्ष की शीतल छाया में लेटा हुआ था। सोए-सोए उसने अपने समीप ही सर्प का बिल देखा, उस पर सर्प फन फैलाए बैठा था।

उसको देखकर वह ब्राह्मण विचार करने लगा कि हो-न-हो, यही मेरे क्षेत्र का देवता है। मैंने कभी इसकी पूजा नहीं की। अतः मैं आज अवश्य

इसकी पूजा करूंगा। यह विचार मन में आते ही वह उठा और कहीं से जाकर दूध मांग लाया।

उसे उसने एक मिट्टी के बरतन में रखा और बिल के समीप जाकर बोला, "हे क्षेत्रपाल! आज तक मुझे आपके विषय में मालूम नहीं था, इसलिए मैं किसी प्रकार की पूजा-अर्चना नहीं कर पाया। आप मेरे इस अपराध को क्षमा कर मुझ पर कृपा कीजिए और मुझे धन-धान्य से समृद्ध कीजिए।"

इस प्रकार प्रार्थना करके उसने उस दूध को वहीं पर रख दिया और फिर अपने घर को लौट गया। दूसरे दिन प्रातःकाल जब वह अपने खेत पर आया तो सर्वप्रथम उसी स्थान पर गया। वहां उसने देखा कि जिस बरतन में उसने दूध रखा था उसमें एक स्वर्णमुद्रा रखी हुई है।

उसने उस मुद्रा को उठाकर रख लिया। उस दिन भी उसने उसी प्रकार सर्प की पूजा की और उसके लिए दूध रखकर चला गया। अगले दिन प्रातःकाल उसको फिर एक स्वर्णमुद्रा मिली।इस प्रकार अब नित्य वह पूजा करता और अगले दिन उसको एक स्वर्णमुद्रा मिल जाया करती थी।

कुछ दिनों बाद उसको किसी कार्य से अन्य ग्राम में जाना पड़ा। उसने अपने पुत्र को उस स्थान पर दूध रखने का निर्देश दिया। तदानुसार उस दिन उसका पुत्र गया और वहां दूध रख आया। दूसरे दिन जब वह पुनः दूध रखने के लिए गया तो देखा कि वहां स्वर्णमुद्रा रखी हुई है।

उसने उस मुद्रा को उठा लिया और वह मन ही मन सोचने लगा कि निश्चित ही इस बिल के अंदर स्वर्णमुद्राओं का भण्डार है। मन में यह विचार आते ही उसने निश्चय किया कि बिल को खोदकर सारी मुद्राएं ले ली जाएं। सर्प का भय था। किन्तु जब दूध पीने के लिए सर्प बाहर निकला तो उसने उसके सिर पर लाठी का प्रहार किया।

इससे सर्प तो मरा नहीं और इस प्रकार से क्रुद्ध होकर उसने ब्राह्मण-पुत्र को अपने विषभरे दांतों से काटा कि उसकी तत्काल मृत्यु हो गई। उसके सम्बधियों ने उस लड़के को वहीं उसी खेत पर जला दिया।

कहा भी जाता है लालच का फल कभी मीठा नहीं होता है।

बूढा आदमी, युवा पत्नी और चोर

किसी ग्राम में किसान दम्पती रहा करते थे। किसान तो वृद्ध था पर उसकी पत्नी युवती थी। अपने पति से संतुष्ट न रहने के कारण किसान की पत्नी सदा पर-पुरुष की टोह में रहती थी, इस कारण एक क्षण भी घर में नहीं ठहरती थी। एक दिन किसी ठग ने उसको घर से निकलते हुए देख लिया।

उसने उसका पीछा किया और जब देखा कि वह एकान्त में पहुँच गई तो उसके सम्मुख जाकर उसने कहा, "देखो, मेरी पत्नी का देहान्त हो चुका है। मैं तुम पर अनुरक्त हूं। मेरे साथ चलो।"

वह बोली, "यदि ऐसी ही बात है तो मेरे पति के पास बहुत-सा धन है, वृद्धावस्था के कारण वह हिलडुल नहीं सकता। मैं उसको लेकर आती हूं, जिससे कि हमारा भविष्य सुखमय बीते।"

"ठीक है जाओ। कल प्रातःकाल इसी समय इसी स्थान पर मिल जाना।"

इस प्रकार उस दिन वह किसान की स्त्री अपने घर लौट गई। रात होने पर जब उसका पति सो गया, तो उसने अपने पति का धन समेटा और उसे लेकर प्रातःकाल उस स्थान पर जा पहुंची। दोनों वहां से चल दिए। दोनों अपने ग्राम से बहुत दूर निकल आए थे कि तभी मार्ग में एक गहरी नदी आ गई।

उस समय उस ठग के मन में विचार आया कि इस औरत को अपने साथ ले जाकर मैं क्या करूंगा। और फिर इसको खोजता हुआ कोई इसके पीछे आ गया तो वैसे भी संकट ही है। अतः किसी प्रकार इससे सारा धन हथियाकर अपना पिण्ड छुड़ाना चाहिए। यह विचार कर उसने कहा, "नदी बड़ी गहरी है। पहले मैं गठरी को उस पार रख आता हूं, फिर तुमको अपनी पीठ पर लादकर उस पार ले चलूंगा। दोनों को एक साथ ले चलना कठिन है।"

"ठीक है, ऐसा ही करो।" किसान की स्त्री ने अपनी गठरी उसे पकड़ाई तो ठग बोला, "अपने पहने हुए गहने-कपड़े भी दे दो, जिससे नदी में चलने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होगी। और कपड़े भीगेंगे भी नहीं।"

उसने वैसा ही किया। उन्हें लेकर ठग नदी के उस पार गया तो फिर लौटकर आया ही नहीं।

वह औरत अपने कुकृत्यों के कारण कहीं की नहीं रही।

इसलिए कहते हैं कि अपने हित के लिए गलत कर्मों का मार्ग नहीं अपनाना चाहिए।

ब्राह्मण, चोर, और दानव की कथा

एक गाँव में द्रोण नाम का ब्राह्मण रहता था। भिक्षा माँग कर उसकी जीविका चलती थी। सर्दी-गर्मी रोकने के लिये उसके पास पर्याप्त वस्त्र भी नहीं थे। एक बार किसी यजमान ने ब्राह्मण पर दया करके उसे बैलों की जोड़ी दे दी। ब्राह्मण ने उनका भरन-पोषण बड़े यत्न से किया। आस-पास से घी-तेल-अनाज माँगकर भी उन बैलों को भरपेट खिलाता रहा। इससे दोनों बैल खूब मोटे-ताजे हो गये । उन्हें देखकर एक चोर के मन में लालच आ गया। उसने चोरी करके दोनों बैलों को भगा लेजाने का निश्चय कर लिया। इस निश्चय के साथ जब वह अपने गाँव से चला तो रास्ते में उसे

लंबे-लंबे दांतों, लाल आँखों, सूखे बालों और उभरी हुई नाक वाला एक भयंकर आदमी मिला।

उसे देखकर चोर ने डरते-डरते पूछा:-"तुम कौन हो ?"

उस भयंकर आकृति वाले आदमी ने कहा:-"मैं ब्रह्मराक्षस हूँ, पास वाले ब्राह्मण के घर से बैलों की जोड़ी चुराने जा रहा हूँ ।"

राक्षस ने कहा :-"मित्र ! पिछले छः दिन से मैंने कुछ भी नहीं खाया । चलो, आज उस ब्राह्मण को मारकर ही भूख मिटाऊँगा । हम दोनों एक ही मार्ग के यात्री हैं । चलो, साथ-साथ चलें ।"

शाम को दोनों छिपकर ब्राह्मण के घर में घुस गये । ब्राह्मण के शैयाशायी होने के बाद राक्षस जब उसे खाने के लिये आगे बढ़ने लगा तो चोर ने कहा:-"मित्र ! यह बात न्यायानुकूल नहीं है । पहले मैं बैलों की जोड़ी चुरा लूँ, तब तू अपना काम करना ।"

राक्षस ने कहा:-"कभी बैलों को चुराते हुए खटका हो गया और ब्राह्मण जाग पड़ा तो अनर्थ हो जायगा, मैं भूखा ही रह जाऊँगा । इसलिये पहले मुझे ब्राह्मण को खा लेने दे, बाद में तुम चोरी कर लेना ।"

चोर ने उत्तर दिया :-"ब्राह्मण की हत्या करते हुए यदि ब्राह्मण बच गया और जागकर उसने रखवाली शुरु कर दी तो मैं चोरी नहीं कर सकूंगा । इसलिये पहले मुझे अपना काम कर लेने दे ।"

दोनों में इस तरह की कहा-सुनी हो ही रही थी कि शोर सुनकर ब्राह्मण जाग उठा । उसे जागा हुआ देख चोर ने ब्राह्मण से कहा:-"ब्राह्मण ! यह राक्षस तेरी जान लेने लगा था, मैंने इसके हाथ से तेरी रक्षा कर दी ।"

राक्षस बोला:-"ब्राह्मण ! यह चोर तेरे बैलों को चुराने आया था, मैंने तुझे बचा लिया ।"

इस बातचीत में ब्राह्मण सावधान हो गया । लाठी उठाकर वह अपनी रक्षा के लिये तैयार हो गया । उसे तैयार देखकर दोनों भाग गये ।

दो सांपों की कथा

एक नगर में देवशक्ति नाम का राजा रहता था । उसके पुत्र के पेट में एक साँप चला गया था । उस साँप ने वहीं अपना बिल बना लिया था । पेट में बैठे साँप के कारण उसके शरीर का प्रति-दिन क्षय होता जा रहा था । बहुत उपचार करने के बाद भी जब स्वास्थ्य में कोई सुधार न हुआ तो अत्यन्त निराश होकर राजपुत्र अपने राज्य से बहुत दूर दूसरे प्रदेश में चला गया । और वहाँ सामान्य भिखारी की तरह मन्दिर में रहने लगा ।

उस प्रदेश के राजा बलि की दो नौजवान लड़कियाँ थीं । वह दोनों प्रति-दिन सुबह अपने पिता को प्रणाम करने आती थीं । उनमें से एक राजा को नमस्कार करती हुई कहती थी:-

"महाराज ! जय हो । आप की कृपा से ही संसार के सब सुख हैं ।" दूसरी कहती थी:-"महाराज ! ईश्वर आप के कर्मों का फल दे ।" दूसरी के वचन को सुनकर महाराज क्रोधित हो जाता था । एक दिन इसी क्रोधावेश में उसने मन्त्रि को बुलाकर आज्ञा दी:-"मन्त्रि ! इस कटु बोलने वाली लड़की को किसी गरीब परदेसी के हाथों में दे दो, जिससे यह अपने कर्मों का फल स्वयं चखे ।"

मन्त्रियों ने राजाज्ञा से उस लड़की का विवाह मन्दिर में सामान्य भिखारी की तरह ठहरे परदेसी राजपुत्र के साथ कर दिया । राजकुमारी ने उसे ही अपना पति मानकर सेवा की । दोनों ने उस देश को छोड़ दिया ।

थोड़ी दूर जाने पर वे एक तालाब के किनारे ठहरे । वहाँ राजपुत्र को छोड़कर उसकी पत्नी पास के गाँव से घी-तेल-अन्न आदि सौदा लेने गई । सौदा लेकर जब वह वापिस आ रही थी , तब उसने देखा कि उसका पति तालाब से कुछ दूरी पर एक साँप के बिल के पास सो रहा है । उसके मुख से एक फनियल साँप बाहर निकलकर हवा खा रहा था । एक दूसरा साँप भी अपने बिल से निकल कर फन फैलाये वहीं बैठा था । दोनों में बातचीत हो रही थी ।

बिल वाला साँप पेट वाले साँप से कह रहा था:-"दुष्ट ! तू इतने सर्वांग सुन्दर राजकुमार का जीवन क्यों नष्ट कर रहा है ?"

पेट वाला साँप बोला:-"तू भी तो इस बिल में पड़े स्वर्णकलश को दूषित कर रहा है ।"

बिल वाला साँप बोला:-"तो क्या तू समझता है कि तुझे पेट से निकालने की दवा किसी को भी मालूम नहीं । कोई भी व्यक्ति राजकुमार को उकाली हुई कांजी की राई पिलाकर तुझे मार सकता है ।"

इस तरह दोनों ने एक दूसरे का भेद खोल दिया । राजकन्या ने दोनों की बातें सुन ली थीं । उसने उनकी बताई विधियों से ही दोनों का नाश कर दिया । उसका पति भी नीरोग होगया; और बिल में से स्वर्ण-भरा कलश पाकर गरीबी भी दूर होगई । तब, दोनों अपने देश को चल दिये । राजपुत्र के माता-पिता दोनों ने उनका स्वागत किया ।

चुहिया का स्वयंवर

गंगा नदी के किनारे एक तपस्वियों का आश्रम था । वहाँ याज्ञवल्क्य नाम के मुनि रहते थे । मुनिवर एक नदी के किनारे जल लेकर आचमन कर रहे थे कि पानी से भरी हथेली में ऊपर से एक चुहिया गिर गई । उस चुहिया को आकाश मेम बाज लिये जा रहा था । उसके पंजे से छूटकर वह नीचे

गिर गई । मुनि ने उसे पीपल के पत्ते पर रखा और फिर से गंगाजल में स्नान किया । चुहिया में अभी प्राण शेष थे । उसे मुनि ने अपने प्रताप से कन्या का रुप दे दिया, और अपने आश्रम में ले आये । मुनि-पत्नी को कन्या अर्पित करते हुए मुनि ने कहा कि इसे अपनी ही लड़की की तरह पालना । उनके अपनी कोई सन्तान नहीं थी , इसलिये मुनिपत्नी ने उसका लालन-पालन बड़े प्रेम से किया । १२ वर्ष तक वह उनके आश्रम में पलती रही ।

जब वह विवाह योग्य अवस्था की हो गई तो पत्नी ने मुनि से कहा:-"नाथ ! अपनी कन्या अब विवाह योग्य हो गई है । इसके विवाह का प्रबन्ध कीजिये ।" मुनि ने कहा:-"मैं अभी आदित्य को बुलाकर इसे उसके हाथ सौंप देता हूँ । यदि इसे स्वीकार होगा तो उसके साथ विवाह कर लेगी, अन्यथा नहीं ।" मुनि ने यह त्रिलोक का प्रकाश देने वाला सूर्य पतिरुप से स्वीकार है ?"

पुत्री ने उत्तर दिया:-"तात ! यह तो आग जैसा गरम है, मुझे स्वीकार नहीं । इससे अच्छा कोई वर बुलाइये।"

मुनि ने सूर्य से पूछा कि वह अपने से अच्छा कोई वर बतलाये।

सूर्य ने कहा:-"मुझ से अच्छे मेघ हैं, जो मुझे ढककर छिपा लेते हैं ।"

मुनि ने मेघ को बुलाकर पूछा:-"क्या यह तुझे स्वीकार है ?"

कन्या ने कहा:-"यह तो बहुत काला है । इससे भी अच्छे किसी वर को बुलाओ ।"

मुनि ने मेघ से भी पूछा कि उससे अच्छा कौन है । मेघ ने कहा, "हम से अच्छी वायु हिअ, जो हमें उड़ाकर दिशा-दिशाओं में ले जाती है" ।

मुनि ने वायु को बुलाया और कन्या से स्वीकृति पूछी । कन्या ने कहा :- "तात ! यह तो बड़ी चंचल है । इससे भी किसी अच्छे वर को बुलाओ ।"

मुनि ने वायु से भी पूछा कि उस से अच्छा कौन है । वायु ने कहा, "मुझ से अच्छा पर्वत है, जो बड़ी से बड़ी आँधी में भी स्थिर रहता है ।"

मुनि ने पर्वत को बुलाया तो कन्या ने कहा:-"तात ! यह तो बड़ा कठोर और गंभीर है, इससे अधिक अच्छा कोई वर बुलाओ ।"

मुनि ने पर्वत से कहा कि वह अपने से अच्छा कोई वर सुझाये । तब पर्वत ने कहा:-"मुझ से अच्छा चूहा है, जो मुझे तोड़कर अपना बिल बना लेता है ।"

मुनि ने तब चूहे को बुलाया और कन्या से कहा:- "पुत्री ! यह मूषकराज तुझे स्वीकार हो तो इससे विवाह कर ले ।"

मुनिकन्या ने मूषकराज को बड़े ध्यान से देखा । उसके साथ उसे विलक्षण अपनापन अनुभव हो रहा था । प्रथम दृष्टि में ही वह उस पर मुग्ध होगई और बोली:-"मुझे मूषिका बनाकर मूषकराज के हाथ सौंप दीजिये ।"

मुनि ने अपने तपोबल से उसे फिर चुहिया बना दिया और चूहे के साथ उसका विवाह कर दिया ।

सुनहरा गोबर

एक पर्वतीय प्रदेश के महाकाय वृक्ष पर सिन्धुक नाम का एक पक्षी रहता था। उसकी विष्ठा में स्वर्ण-कण होते थे। एक दिन एक व्याध उधर से गुजर रहा था। व्याध को उसकी विष्ठा के स्वर्णमयी होने का ज्ञान नहीं था। इससे सम्भव था कि व्याध उसकी उपेक्षा करके आगे निकल जाता। किन्तु मूर्ख सिन्धुक पक्षी ने वृक्ष के ऊपर से व्याध के सामने ही स्वर्ण-कण-पूर्ण विष्ठा

कर दी। उसे देख व्याध ने वृक्ष पर जाल फैला दिया और स्वर्ण के लोभ से उसे पकड़ लिया ।

उसे पकड़कर व्याध अपने घर ले आया। वहाँ उसे पिंजरे में रख लिया । लेकिन, दूसरे ही दिन उसे यह डर सताने लगा कि कहीं कोई आदमी पक्षी की विष्ठा के स्वर्णमय होने की बात राजा को बता देगा तो उसे राजा के सम्मुख दरबार में पेश होना पड़ेगा। संभव है राजा उसे दण्ड भी दे । इस भय से उसने स्वयं राजा के सामने पक्षी को पेश कर दिया।

राजा ने पक्षी को पूरी सावधानी के साथ रखने की आज्ञा निकाल दी। किन्तु राजा के मन्त्री ने राजा को सलाह दी कि, "इस व्याध की मूर्खतापूर्ण बात पर विश्वास करके उपहास का पात्र न बनो । कभी कोई पक्षी भी स्वर्ण-मयी विष्ठा दे सकता है ? इसे छोड़ दीजिये ।" राजा ने मन्त्री की सलाह मानकर उसे छोड़ दिया । जाते हुए वह राज्य के प्रवेश-द्वार पर बैठकर फिर स्वर्णमयी विष्ठा कर गया; और जाते-जाते कहता गया :-

"पूर्वं तावदहं मूर्खो द्वितीयः पाशबन्धकः ।
ततो राजा च मन्त्रि च सर्वं वै मूर्खमण्डलम् ॥

अर्थात्, पहले तो मैं ही मूर्ख था, जिसने व्याध के सामने विष्ठा की; फिर व्याध ने मूर्खता दिखलाई जो व्यर्थ ही मुझे राजा के सामने ले गया; उसके बाद राजा और मन्त्री भी मूर्खों के सरताज निकले । इस राज्य में सब मूर्ख-मंडल ही एकत्र हुआ है ।

बोलने वाली गुफा

किसी जंगल में एक शेर रहता था। एक बार वह दिन-भर भटकता रहा, किंतु भोजन के लिए कोई जानवर नहीं मिला। थककर वह एक गुफा के अंदर आकर बैठ गया। उसने सोचा कि रात में कोई न कोई जानवर इसमें अवश्य आएगा। आज उसे ही मारकर मैं अपनी भूख शांत करूँगा।

उस गुफा का मालिक एक सियार था। वह रात में लौटकर अपनी गुफा पर आया। उसने गुफा के अंदर जाते हुए शेर के पैरों के निशान देखे। उसने ध्यान से देखा। उसने अनुमान लगाया कि शेर अंदर तो गया, परंतु अंदर से बाहर नहीं आया है। वह समझ गया कि उसकी गुफा में कोई शेर छिपा बैठा है।

चतुर सियार ने तुरंत एक उपाय सोचा। वह गुफा के भीतर नहीं गया।उसने द्वार से आवाज लगाई-

'ओ मेरी गुफा, तुम चुप क्यों हो? आज बोलती क्यों नहीं हो? जब भी मैं बाहर से आता हूँ, तुम मुझे बुलाती हो। आज तुम बोलती क्यों नहीं हो?'

गुफा में बैठे हुए शेर ने सोचा, ऐसा संभव है कि गुफा प्रतिदिन आवाज देकर सियार को बुलाती हो। आज यह मेरे भय के कारण मौन है। इसलिए आज मैं ही इसे आवाज देकर अंदर बुलाता हूँ। ऐसा सोचकर शेर ने अंदर से आवाज लगाई और कहा -'आ जाओ मित्र, अंदर आ जाओ।'

आवाज सुनते ही सियार समझ गया कि अंदर शेर बैठा है। वह तुरंत वहाँ से भाग गया। और इस तरह सियार ने चालाकी से अपनी जान बचा ली।

सांप की सवारी करने वाले मेढकों की कथा

किसी पर्वत प्रदेश में मन्दविष नाम का एक वृद्ध सर्प रहा करता था। एक दिन वह विचार करने लगा कि ऐसा क्या उपाय हो सकता है, जिससे बिना परिश्रम किए ही उसकी आजीविका चलती रहे। उसके मन में तब एक विचार आया।

वह समीप के मेढकों से भरे तालाब के पास चला गया। वहां पहुँचकर वह बड़ी बेचैनी से इधर-उधर घूमने लगा। उसे इस प्रकार घूमते देखकर

तालाब के किनारे एक पत्थर पर बैठे मेढक को आश्चर्य हुआ तो उसने पूछा,

"मामा! आज क्या बात है? शाम हो गई है, किन्तु तुम भोजन-पानी की व्यवस्था नहीं कर रहे हो?"
सर्प बड़े दुःखी मन से कहने लगा,

"बेटे! क्या करूं, मुझे तो अब भोजन की अभिलाषा ही नहीं रह गई है। आज बड़े सवेरे ही मैं भोजन की खोज में निकल पड़ा था। एक सरोवर के तट पर मैंने एक मेढक को देखा। मैं उसको पकड़ने की सोच ही रहा था कि उसने मुझे देख लिया। समीप ही कुछ ब्राह्मण स्वाध्याय में लीन थे, वह उनके मध्य जाकर कहीं छिप गया।" उसको तो मैंने फिर देखा नहीं।

किन्तु उसके भ्रम में मैंने एक ब्राह्मण के पुत्र के अंगूठे को काट लिया। उससे उसकी तत्काल मृत्यु हो गई। उसके पिता को इसका बड़ा दुःख हुआ और उस शोकाकुल पिता ने मुझे शाप देते हुए कहा,
"दुष्ट! तुमने मेरे पुत्र को बिना किसी अपराध के काटा है, अपने इस अपराध के कारण तुमको मेढकों का वाहन बनना पड़ेगा।" "बस, तुम लोगों के वाहन बनने के उद्देश्य से ही मैं यहां तुम लोगों के पास आया हूं।"

मेढक सर्प से यह बात सुनकर अपने परिजनों के पास गया और उनको भी उसने सर्प की वह बात सुना दी। इस प्रकार एक से दूसरे और दूसरे से तीसरे कानों में जाती हुई यह बात सब मेढकों तक पहुँच गई। उनके राजा जलपाद को भी इसका समाचार मिला। उसको यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। सबसे पहले वही सर्प के पास जाकर उसके फन पर चढ़ गया। उसे चढ़ा हुआ देखकर अन्य सभी मेढक उसकी पीठ पर चढ़ गए। सर्प ने किसी को कुछ नहीं कहा।

मन्दविष ने उन्हें भांति-भांति के करतब दिखाए। सर्प की कोमल त्वचा के स्पर्श को पाकर जलपाद तो बहुत ही प्रसन्न हुआ। इस प्रकार एक दिन निकल गया। दूसरे दिन जब वह उनको बैठाकर चला तो उससे चला नहीं

गया। उसको देखकर जलपाद ने पूछा, "क्या बात है, आज आप चल नहीं पा रहे हैं?"
"हां, मैं आज भूखा हूं इसलिए चलने में कठिनाई हो रही है।" जलपाद बोला,
"ऐसी क्या बात है। आप साधारण कोटि के छोटे-मोटे मेढकों को खा लिया कीजिए।"

इस प्रकार वह सर्प नित्यप्रति बिना किसी परिश्रम के अपना भोजन पा गया। किन्तु वह जलपाद यह भी नहीं समझ पाया कि अपने क्षणिक सुख के लिए वह अपने वंश का नाश करने का भागी बन रहा है। सभी मेढकों को खाने के बाद सर्प ने एक दिन जलपाद को भी खा लिया। इस तरह मेढकों का समूचा वंश ही नष्ट हो गया।

इसीलिए कहते हैं कि अपने हितैषियों की रक्षा करने से हमारी भी रक्षा होती है।

कौवे और उल्लू का युद्ध

दक्षिण देश में मलयगिरी नाम का एक नगर था । नगर के पास एक बड़ा पीपल का वृक्ष था । उसकी घने पत्तों से ढकी शाखाओं पर पक्षियों के घोंसले बने हुए थे । उन्हीं में से कुछ घोंसलों में कौवों के बहुत से परिवार रहते थे । कौवों का राजा मेघवर्ण भी वहीं रहता था । वहाँ उसने अपने दल के लिये एक व्यूह सा बना लिया था । उससे कुछ दूर पर्वत की गुफा में उल्लओं का दल रहता था । इनका राजा अरिमर्दन था ।

दोनों में स्वाभाविक वैर था । अरिमर्दन हर रात पीपल के वृक्ष के चारों ओर चक्कर लगाता था । वहाँ कोई इकला-दुकला कौवा मिल जाता तो उसे मार देता था । इसी तरह एक-एक करके उसने सैंकड़ों कौवे मार दिये ।

तब, मेघवर्ण ने अपने मन्त्रियों को बुलाकर उनसे उलूकराज के प्रहारों से बचने का उपाय पूछा । उसने कहा, "कठिनाई यह है कि हम रात को देख नहीं सकते और दिन को उल्लू न जाने कहाँ जा छिपते हैं । हमें उनके स्थान के सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं । समझ नहीं आता कि इस समय सन्धि, युद्ध, यान, आसन, संश्रय, द्वैधीभाव आदि उपायों में से किसका प्रयोग किया जाय ?"

पहले मेघवर्ण ने 'उज्जीवी' नाम के प्रथम सचिव से प्रश्न किया। उसने उत्तर दिया:-"महाराज ! बलवान् शत्रु से युद्ध नहीं करना चाहिये । उससे तो सन्धि करना ही ठीक है । युद्ध से हानि ही हानि है । समान बल वाले शत्रु से भी पहले सन्धि करके, कछुए की तरह सिमटकर, शक्ति-संग्रह करने के बाद ही युद्ध करना उचित है ।"

उसके बाद 'संजीवी' नाम के द्वितीय सचिव से प्रश्न किया गया । उसने कहा:-"महाराज ! शत्रु के साथ सन्धि नहीं करनी चाहिये । शत्रु सन्धि के बाद भी नाश ही करता है। पानी अग्नि द्वारा गरम होने के बाद भी अग्नि को बुझा ही देता है । विशेषतः क्रूर, अत्यन्त लोभी और धर्म रहित शत्रु से तो कभी भी सन्धि न करे। शत्रु के प्रति शान्ति-भाव दिखलाने से उसकी शत्रुता की आग और भी भड़क जाती है । वह और भी क्रूर हो जाता है। जिस शत्रु से हम आमने-सामने की लड़ाई न लड़ सकें उसे छलबल द्वारा हराना चाहिये, किन्तु सन्धि नहीं करनी चाहिये । सच तो यह है कि जिस राजा की भूमि शत्रुओं के खून से और उनकी विधवा स्त्रियों के आँसुओं से नहीं सींची गई, वह राजा होने योग्य ही नहीं ।"

तब मेघवर्ण ने तृतीय सचिव अनुजीवी से प्रश्न किया । उसने कहा:- "महाराज ! हमारा शत्रु दुष्ट है, बल में भी अधिक है । इसलिये उसके साथ सन्धि और युद्ध दोनों के करने में हानि है । उसके लिये तो शास्त्रों में यान नीति का ही विधान है । हमें यहाँ से किसी दूसरे देश में चला जाना चाहिये । इस तरह पीछे हटने में कायरता-दोष नहीं होता । शेर भी तो हमला करने से पहले पीछे हटता है । वीरता का अभिमान करके जो हठपूर्वक

युद्ध करता है वह शत्रु की ही इच्छा पूरी करता है और अपने व अपने वंश का नाश कर लेता है ।"

इसके बाद मेघवर्ण ने चतुर्थ सचिव 'प्रजीवी' से प्रश्न किया । उसने कहा:- "महाराज ! मेरी सम्मति में तो सन्धि, विग्रह और यान, तीनों में दोष है । हमारे लिये आसन-नीति का आश्रय लेना ही ठीक है । अपने स्थान पर दृढ़ता से बैठना सब से अच्छा उपाय है । मगरमच्छ अपने स्थान पर बैठकर शेर को भी हरा देता है , हाथी को भी पानी में खींच लेता है । वही यदि अपना स्थान छोड़ दे तो चूहे से भी हार जाय । अपने दुर्ग में बैठकर हम बड़े से बड़े शत्रु का सामना कर सकते हैं । अपने दुर्ग में बैठकर हमारा एक सिपाही शत-शत शत्रुओं का नाश कर सकता है । हमें अपने दुर्ग को दृढ़ बनाना चाहिये । अपने स्थान पर दृढता से खड़े छोटे-छोटे वृक्षों को आँधी-तूफान के प्रबल झोंके भी उखाड़ नहीं सकते ।"

तब मेघवर्ण ने चिरंजीवी नाम के पंचम सचिव से प्रश्न किया । उसने कहा:- "महाराज ! मुझे तो इस समय संश्रय नीति ही उचित प्रतीत होती है । किसी बलशाली सहायक मित्र को अपने पक्ष में करके ही हम शत्रु को हरा सकते हैं । अतः हमें यहीं ठहर कर किसी समर्थ मित्र की सहायता ढूंढ़नी चाहिये । यदि एक समर्थ मित्र न मिले तो अनेक छोटे छोटे मित्रों की सहायता भी हमारे पक्ष को सबल बना सकती है । छोटे छोटे तिनकों से गुथी हुई रस्सी भी इतनी मजबूत बन जाती है कि हाथी को जकड़कर बाँध लेती है।

पांचों मन्त्रियों से सलाह लेने के बाद मेघवर्ण अपने वंशागत सचिव स्थिरजीवी के पास गया । उसे प्रणाम करके वह बोला:-"श्रीमान् ! मेरे सभी मन्त्री मुझे जुदा-जुदा राय दे रहे हैं । आप उनकी सलाहें सुनकर अपना निश्चय दीजिये ।"

स्थिरजीवी ने उत्तर दिया:-"वत्स ! सभी मन्त्रियों ने अपनी बुद्धि के अनुसार ठीक ही मन्त्रणा दी है, अपने-अपने समय सभी नीतियाँ अच्छी होती हैं । किन्तु, मेरी सम्मति में तो तुम्हें द्वैधीभाव, या भेदनीति का ही आश्रय लेना

चाहिये । उचित यह है कि पहले हम सन्धि द्वारा शत्रु में अपने लिये विश्वास पैदा कर लें, किन्तु शत्रु पर विश्वास न करें। सन्धि करके युद्ध की तैयारी करते रहें; तैयारी पूरी होने पर युद्ध कर दें। सन्धिकाल में हमें शत्रु के निर्बल स्थलों का पता लगाते रहना चाहिये । उनसे परिचित होने के बाद वहीं आक्रमण कर देना उचित है ।"

मेघवर्ण ने कहा:-"आपका कहना निस्संदेह सत्य है, किन्तु शत्रु का निर्बल स्थल किस तरह देखा जाए ?"

स्थिरजीवी:-"गुप्तचरों द्वारा ही हम शत्रु के निर्बल स्थल की खोज कर सकते हैं । गुप्तचर ही राजा की आँख का काम देता है । और हमें छल द्वारा शत्रु पर विजय पानी चाहिये ।

मेघवर्ण:-"आप जैसा आदेश करेंगे, वैसा ही मैं करुँगा ।"

स्थिरजीवी:-"अच्छी बात है । मैं स्वयं गुप्तचर का काम करुंगा । तुम मुझ से लड़कर, मुझे लहू-लुहान करने के बाद इसी वृक्ष के नीचे फेंककर स्वयं सपरिवार ऋष्यमूक पर्वत पर चले जाओ। मैं तुम्हारे शत्रु उल्लुओं का विश्वासपात्र बनकर उन्हें इस वृक्ष पर बने अपने दुर्ग में बसा लूंगा और अवसर पाकर उन सब का नाश कर दूंगा । तब तुम फिर यहाँ आ जाना।"

मेघवर्ण ने ऐसा ही किया । थोड़ी देर में दोनों की लड़ाई शुरु हो गई । दूसरे कौवे जब उसकी सहायता को आए तो उसने उन्हें दूर करके कहा:- " इसको दण्ड मैं स्वयं दूंगा ।" अपनी चोंचों के प्रहार से घायल करके वह स्थिरजीवी को वहीं फैंकने के बाद अपने आप परिवारसहित ऋष्यमूक पर्वत पर चला गया।

तब उल्लू की मित्र कोयल ने मेघवर्ण के भागने और अमात्य स्थिरजीवी से लडा़ई होने की बात उलूकराज से कह दी। उलूकराज ने भी रात आने पर दलबल समेत पीपल के वृक्ष पर आक्रमण कर दिया । उसने सोचा :-

भागते हुए शत्रु को नष्ट करना अधिक सहज होता है । पीपल के वृक्ष को घेरकर उसने शेष रह गए सभी कौवों को मार दिया ।

अभी उलूकराज की सेना भागे हुए कौवों का पीछा करने की सोच रही थी कि आहत स्थिरजीवी ने कराहना शुरु कर दिया। उसे सुनकर सब का ध्यान उसकी ओर गया। सब उल्लू उसे मारने को झपटे । तब स्थिरजीवी ने कहा:

"इससे पूर्व कि तुम मुझे जान से मार डालो, मेरी एक बात सुन लो । मैं मेघवर्ण का मन्त्री हूँ । मेघवर्ण ने ही मुझे घायल करके इस तरह फैंक दिया था । मैं तुम्हारे राजा से बहुत सी बातें कहना चाहता हूँ । उससे मेरी भेंट करवादो ।"

सब उल्लुओं ने उलूकराज से यह बात कही । उलूकराज स्वयं वहाँ आया। स्थिरजीवी को देखकर वह आश्चर्य से बोला:-"तेरी यह दशा किसने कर दी ?"

स्थिरजीवी बोला:-" देव ! बात यह हुई कि दुष्ट मेघवर्ण आपके ऊपर सेना सहित आक्रमण करना चाहता था । मैंने उसे रोकते हुए कहा कि वे बहुत बलशाली हैं, उनसे युद्ध मत करो, उनसे सुलह कर लो । बलशाली शत्रु से सन्धि करना ही उचित है; उसे सब कुछ देकर भी वह अपने प्राणों की रक्षा तो कर ही लेता है । मेरी बात सुनकर उस दुष्ट मेघवर्ण ने समझा कि मैं आपका हितचिन्तक हूँ । इसीलिए वह मुझ पर झपट पड़ा । अब आप ही मेरे स्वामी हैं । मैं आपकी शरण आया हूँ । जब मेरे घाव भर जायंगे तो मैं स्वयं आपके साथ जाकर मेघवर्ण को खोज निकालूंगा और उसके सर्वनाश में आपका सहायक बनूंगा ।"

स्थिरजीवी की बात सुनकर उलूकराज ने अपने सभी पुराने मंत्रियों से सलाह ली । उसके पास भी पांच मन्त्री थे "रक्ताक्ष, क्रूराक्ष, दीप्ताक्ष, वक्रनास, प्राकारकर्ण।

पहले उसने रक्ताक्ष से पूछा:-"इस शरणागत शत्रु मन्त्री के साथ कौनसा व्यवहार किया जाय ?" रक्ताक्ष ने कहा कि इसे अविलम्ब मार दिया जाय । शत्रु को निर्बल अवस्था में ही मर देना चाहिए, अन्यथा बली होने के बाद वही दुर्जय हो जाता है । इसके अतिरिक्त एक और बात है; एक बार टूट कर जुड़ी हुई प्रीति स्नेह के अतिशय प्रदर्शन से भी बढ़ नहीं सकती ।"

रक्ताक्ष से सलाह लेने के बाद उलूकराज ने दूसरे मन्त्री क्रूराक्ष से सलाह ली कि स्थिरजीवी का क्या किया जाय ?

क्रूराक्ष ने कहा:-"महाराज ! मेरी राय में तो शरणागत की हत्या पाप है ।

क्रूराक्ष के बाद अरिमर्दन ने दीप्ताक्ष से प्रश्न किया ।

दीप्ताक्ष ने भी यही सम्मति दी ।

इसके बाद अरिमर्दन ने वक्रनास से प्रश्न किया । वक्रनास ने भी कहा:- "देव ! हमें इस शरणागत शत्रु की हत्या नहीं करनी चाहिये । कई बार शत्रु भी हित का कार्य कर देते हैं । आपस में ही जब उनका विवाद हो जाए तो एक शत्रु दूसरे शत्रु को स्वयं नष्ट कर देता है ।

उसकी बात सुनने के बाद अरिमर्दन ने फिर दुसरे मन्त्री 'प्राकारकर्ण' से पूछा:-"सचिव ! तुम्हारी क्या सम्मति है ?"

प्राकारकर्ण ने कहा :-"देव ! यह शरणागत व्यक्ति अवध्य ही है । हमें अपने परस्पर के मर्मों की रक्षा करनी चाहिये ।

अरिमर्दन ने भी प्राकारकर्ण की बात का समर्थन करते हुए यही निश्चय किया कि स्थिरजीवी की हत्या न की जाय । रक्ताक्ष का उलूकराज के इस निश्चय से गहरा मतभेद था । वह स्थिरजीवी की मृत्यु में ही उल्लुओं का हित देखताथा । अतः उसने अपनी सम्मति प्रकट करते हुए अन्य मन्त्रियों

से कहा कि तुम अपनी मूर्खता से उलूकवंश का नाश कर दोगे । किन्तु रक्ताक्ष की बात पर किसी ने ध्यान नहीं दिया ।

उलूकराज के सैनिकों ने स्थिरजीवी कौवे को शैया पर लिटाकर अपने पर्वतीय दुर्ग की ओर कूच कर दिया। दुर्ग के पास पहुँच कर स्थिरजीवी ने उलूकराज से निवेदन किया:-"महाराज ! मुझ पर इतनी कृपा क्यों करते हो ? मैं इस योग्य नहीं हूँ । अच्छा हो, आप मुझे जलती हुई आग मे डाल दें ।"

उलूकराज ने कहा:-"ऐसा क्यों कहते हो ?"

स्थिरजीवी:-"स्वामी ! आग में जलकर मेरे पापों का प्रायश्चित्त हो जायगा । मैं चाहता हूँ कि मेरा कौवा रूप आग में नष्ट हो जाय और मुझ उल्लू बन जाऊ, तभी मैं उस पापी मेघवर्ण से बदला ले सकूंगा ।"

रक्ताक्ष स्थिरजीवी की इस पाखंडभरी चालों को खूब समझ रहा था । उसने कहा:-"स्थिरजीवी ! तू बड़ा चतुर और कुटिल है । मैं जानता हूँ कि उल्लू बनकर भी तू कौवों का ही हित सोचेगा।

उलूकराज के अज्ञानुसार सैनिक स्थिरजीवी को अपने दुर्ग में ले गये। दुर्ग के द्वार पर पहुँच कर उलूकराज अरिमर्दन ने अपने साथियों से कहा कि स्थिरजीवी को वही स्थान दिया जाय जहाँ वह रहनाचाहे।

स्थिरजीवी ने सोचा कि उसे दुर्ग के द्वार पर ही रहना चाहिये, जिससे दुर्ग से बाहर जाने का अवसर मिलता रहे ।

यही सोच उसने उलूकराज से कहा:-"देव ! आपने मुझे यह आदर देकर बहुत लज्जित किया है । मैं तो आप का सेवक ही हूँ, और सेवक के स्थान पर ही रहना चाहता हूँ। मेरा स्थान दुर्ग के द्वार पर ही रखिये। द्वार की जो धूलि आप के पद-कमलों से पवित्र होगी उसे अपने मस्तक पर रखकर ही मैं अपने को सौभाग्यवान मानूंगा ।"

उलूकराज इन मीठे वचनों को सुनकर फूले न समाये । उन्होंने अपने साथियों को कहा कि स्थिरजीवी को यथेष्ट भोजन दिया जाय ।

प्रतिदिन स्वादु और पुष्ट भोजन खाते-खाते स्थिरजीवी थोड़े ही दिनों में पहले जैसा मोटा और बलवान हो गया ।

रक्ताक्ष ने जब स्थिरजीवी को हृष्टपुष्ट होते देखा तो वह मन्त्रियों से बोला:- "यहाँ सभी मूर्ख हैं। लेकिन मन्त्रियों ने अपने मूर्खताभरे व्यवहार में परिवर्तन नहीं किया । पहले की तरह ही वे स्थिरजीवी को अन्न-मांस खिला-पिला कर मोटा करते रहे ।

रक्ताक्ष ने यह देख कर अपने पक्ष के साथियों से कहा कि अब यहाँ हमें नहीं ठहरना चाहिये । हम किसी दूसरे पर्वत की कन्दरा में अपना दुर्ग बना लेंगे ।

फिर रक्ताक्ष ने अपने साथियों से कहा कि ऐसे मूर्ख समुदाय में रहना विपत्ति को पास बुलाना है । उसी दिन परिवारसमेत रक्ताक्ष वहाँ से दूर किसी पर्वत-कन्दरा में चला गया ।

रक्ताक्ष के विदा होने पर स्थिरजीवी बहुत प्रसन्न होकर सोचने लगा:-"यह अच्छा ही हुआ कि रक्ताक्ष चला गया । इन मूर्ख मन्त्रियों में अकेला वही चतुर और दूरदर्शी था ।"

रक्ताक्ष के जाने के बाद स्थिरजीवी ने उल्लुओं के नाश की तैयारी पूरे जोर से शुरु करदी । छोटी-छोटी लकड़ियाँ चुनकर वह पर्वत की गुफा के चारों ओर रखने लगा ।

जब पर्याप्त लकड़ियाँ एकत्र हो गई तो वह एक दिन सूर्य के प्रकाश में उल्लुओं के अन्धे होने के बाद अपने पहले मित्र राजा मेघवर्ण के पास गया, और बोला:-"मित्र ! मैंने शत्रु को जलाकर भस्म कर देने की पूरी योजन

तैयार करली है । तुम भी अपनी चोंचों में एक-एक जलती लकड़ी लेकर उलूकराज के दुर्ग के चारों ओर फैला दो । दुर्ग जलकर राख हो जायगा । शत्रुदल अपने ही घर में जलकर नष्ट हो जायगा ।"

यह बात सुनकर मेघवर्ण बहुत प्रसन्न हुआ । उसने स्थिरजीवी से कहा:- "महाराज, कुशल-क्षेम से तो रहे, बहुत दिनों के बाद आपके दर्शन हुए हैं ।"

स्थिरजीवी ने कहा :-"वत्स ! यह समय बातें करने का नहीं, यदि किसी शत्रु ने वहाँ जाकर मेरे यहाँ आने की सूचना दे दी तो बना-बनाया खेल बिगड़ जाएगा । शत्रु कहीं दूसरी जगह भाग जाएगा । जो काम शीघ्रता से करने योग्य हो, उसमें विलम्ब नहीं करना चाहिए । शत्रुकुल का नाश करके फिर शांति से बैठ कर बातें करेंगे ।

मेघवर्ण ने भी यह बात मान ली । सभी कौवे अपनी चोंचों में एक-एक जलती हुई लकड़ी लेकर शत्रु-दुर्ग की ओर चल पड़े और वहाँ जाकर लकड़ियाँ दुर्ग के चारों ओर फैला दीं । उल्लुओं के घर जलकर राख हो गए और सारे उल्लू अन्दर ही अन्दर तड़प कर मर गए ।

इस प्रकार उल्लुओं का वंशनाश करके मेघवर्ण फिर अपने पुराने पीपल के वृक्ष पर आ गया । विजय के उपलक्ष में सभा बुलाई गई । स्थिरजीवी को बहुत सा पुरस्कार देकर मेघवर्ण ने उस से पूछा :-"महाराज ! आपने इतने दिन शत्रु के दुर्ग में किस प्रकार व्यतीत किये ? शत्रु के बीच रहना तो बड़ा संकटापन्न है । हर समय प्राण गले में अटके रहते हैं ।"

स्थिरजीवी ने उत्तर दिया:-"तुम्हारी बात ठीक है, किन्तु मैं तो आपका सेवक हूँ । सेवक को अपनी तपश्चर्या के अंतिम फल का इतना विश्वास होता है कि वह क्षणिक कष्टों की चिन्ता नहीं करता। इसके अतिरिक्त, मैंने यह देखा कि तुम्हारे प्रतिपक्षी उलूकराज के मन्त्री महामूर्ख हैं। एक रक्ताक्ष ही बुद्धिमान था, वह भी उन्हें छोड़ गया । मैंने सोचा, यही समय बदला लेने का है। शत्रु के बीच विचरने वाले गुप्तचर को मान-अपमान की

चिन्ता छोड़नी ही पड़ती है। वह केवल अपने राजा का स्वार्थ सोचता है। मान-मर्यादा की चिन्ता का त्याग करके वह स्वार्थ-साधन के लिये चिन्ताशील रहता है।

वायसराज मेघवर्ण ने स्थिरजीवी को धन्यवाद देते हुए कहा:-"मित्र, आप बड़े पुरुषार्थी और दूरदर्शी हैं। एक कार्य को प्रारंभ करके उसे अन्त तक निभाने की आपकी क्षमता अनुपम है। संसारे में कई तरह के लोग हैं । नीचतम प्रवृत्ति के वे हैं जो विघ्न-भय से किसी भी कार्य का आरंभ नहीं करते, मध्यम वे हैं जो विघ्न-भय से हर काम को बीच में छोड़ देते हैं, किन्तु उत्कृष्ट वही हैं जो सैंकड़ों विघ्नों के होते हुए भी आरंभ किये गये काम को बीच में नहीं छोड़ते। आपने मेरे शत्रुओं का समूल नाश करके उत्तम कार्य किया है ।"

स्थिरजीवी ने उत्तर दिया:-"महाराज ! मैंने अपना धर्म पालन किया। दैव ने आपका साथ दिया । पुरुषार्थ बहुत बड़ी वस्तु है, किन्तु दैव अनुकूल न हो तो पुरुषार्थ भी फलित नहीं होता। आपको अपना राज्य मिल गया। किन्तु स्मरण रखिये, राज्य क्षणस्थायी होते हैं। बड़े-बड़े विशाल राज्य क्षणों में बनते और मिटते रहते हैं। शाम के रंगीन बादलों की तरह उनकी आभा भी क्षणजीवी होती है। इसलिये राज्य के मद में आकर अन्याय नहीं करना, और न्याय से प्रजा का पालन करना । राजा प्रजा का स्वामी नहीं, सेवक होता है ।"

इसके बाद स्थिरजीवी की सहायता से मेघवर्ण बहुत वर्षों तक सुखपूर्वक राज्य करता रहा ।

लब्धप्रणाशा

बंदर का कलेजा और मगरमच्छ

किसी नदी के किनारे एक बहुत बड़ा पेड़ था। उस पर एक बंदर रहता था। उस पेड़ पर बड़े मीठे-रसीले फल लगते थे। बंदर उन्हें भरपेट खाता और मौज उड़ाता। वह अकेला ही मजे में दिन गुजार रहा था।

एक दिन एक मगर कहीं से निकलकर उस पेड़ के तले आया, जिस पर बंदर रहता था। पेड़ पर से बंदर ने पूछा,

'तू कौन है भाई?'

मगर ने बंदर की ओर देखकर कहा, 'मैं मगर हूं। बड़ी दूर से आया हूं। खाने की तलाश में यूं ही धूम रहा हूं।'

बंदर ने कहा, 'यहां खाने की कोई कमी नहीं है। इस पेड़ पर ढेरों फल लगते हैं। चखकर देखो। अच्छे लगे तो मैं और दूंगा। जितने जी चाहें खाओ।' यह कह कर बंदर ने कुछ फल तोड़कर बंदर की ओर फेंक दिए।

मगर ने उन्हें चखकर कहा, 'वाह, ये तो बड़े मजेदार हैं।'

बंदर ने और भी ढेर से फल गिरा दिए। मगर उन्हें भी चट कर गया और बोला, 'कल फिर आउंगा। फल खिलाओगे?'

बंदर ने कहा, 'क्यों नहीं? तुम मेरे मेहमान हो। रोज आओ और जितने जी चाहें खाओ।'

अगर अगले दिन आने का वादा करके चला गया। दूसरे दिन मगर फिर आया। उसने भरपेट फल खाए और बंदर के साथ गपशप करता रहा। बंदर अकेला था। एक दोस्त पाकर बहुत खुश हुआ। अब तो मगर रोज आने लगा। मगर और बंदर दोनों भरपेट फल खाते और बड़ी देर तक बातचीत करते रहते।

एक दिन यूं ही वे अपने-अपने घरों की बातें करने लगे। बातों-बातों में बंदर ने कहा कि , 'मगर भाई मैं दुनिया में अकेला हूं और तुम्हारे जैसा मित्र पाकर अपने को भाग्यशाली समझता हूं।'

मगर ने कहा कि मैं तो अकेला नहीं हूं। घर में मेरी पत्नी है। नदी के उस पार हमारा घर है।

बंदर ने कहा, 'तुमने पहले क्यों नहीं बताया कि तुम्हारी पत्नी है। मैं भाभी के लिए भी फल भेजता।'

मगर ने कहा कि वह बड़े शौक से अपनी पत्नी के लिए ये रसीले फल ले जाएगा। जब मगर जाने लगा तो बंदर ने उसकी पत्नी के लिए बहुत से पके हुए फल तोड़कर दिए। उस दिन मगर अपनी पत्नी के लिए बंदर की यह भेंट ले गया।

मगर की पत्नी को फल बहुत पसंद आए। उसने मगर से कहा कि वह रोज इसी तरह रसीले फल लाया करे। मगर ने कहा कि वह कोशिश करेगा। धीरे-धीरे बंदर और मगर में गहरी दोस्ती हो गई। मगर रोज बंदर से मिलने जाता। जी भरकर फल खाता और अपनी पत्नी के लिए भी ले जाता।

मगर की पत्नी को फल खाना अच्छा लगता था पर अपने पति का देर से घर लौटना उसे पसंद नहीं था। वह इसे रोकना चाहती थी। एक दिन उसने कहा,

'मुझे लगता है तुम झूठ बोलते हो। भला मगर और बंदर में कहीं दोस्ती होती है? मगर तो बंदर को मारकर खा जाते हैं।'

मगर ने कहा कि, 'मैं सच बोल रहा हूं। वह बंदर बहुत भला है। हम दोनों एक-दूसरे को बहुत चाहते हैं। बेचारा रोज तुम्हारे लिए इतने सारे बढ़िया फल भेजता है। बंदर मेरा दोस्त न होता तो मैं ये फल कहां से लाता। मैं खुद तो पेड़ पर चढ़ नहीं सकता।'

मगर की पत्नी बड़ी चालाक थी। उसने सोचा, 'अगर वह बंदर रोज-रोज इतने मीठे फल खाता है तो उसका मांस कितना मीठा होगा। यदि वह मिल जाए तो कितन मजा आए।' यह सोचकर उसने मगर से कहा,

'एक दिन तुम अपने दोस्त को घर ले आओ। मैं उससे मिलना चाहती हूं।'

मगर ने कहा, 'नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता है। वह तो जमीन पर रहने वाला जानवर है। पानी में तो डूब जाएगा।'

उसकी पत्नी ने कहा, 'तुम उसको न्योता तो दो। बंदर चालाक होते हैं। वह यहां आने का कोई न कोई उपाए निकाल ही लेगा।'

मगर बंदर को न्योता नहीं देना चाहता था। परंतु उसकी पत्नी रोज उससे पूछती कि बंदर कब आएगा। मगर कोई न कोई बहाना बना देता। ज्यों-ज्यों दिन गुजरने जाते बंदर के मांस के लिए मगर की पत्नी की इच्छा तीव्र होती जाती।

मगर की पत्नी ने एक तरकीब सोची। एक दिन उसने बीमारी का बहाना किया और ऐसे आंसू बहाने लगी मानो उसे बहुत दर्द हो रहा है। मगर अपनी पत्नी की बीमारी से बहुत दुखी था। वह उसके पास बैठकर बोला, 'बताओ मैं तुम्हारे लिए क्या करूं।'

पत्नी बोली, 'मैं बहुत बीमार हूं। मैंने जब वैद्य से पूछा तो उसने बताया कि वह कहता है कि जब तक मैं बंदर का कलेजा नहीं खाउंगी तब तक मैं ठीक नहीं हो सकती हूं।

बंदर का कलेजा' मगर ने आश्चर्य से पूछा।

मगर की पत्नी ने कराहते हुए कहा, 'हां, बंदर का कलेजा। अगर तुम चाहते हो कि मैं बच जाउं तो अपने मित्र बंदर का कलेजा लाकर मुझे खिलाओ।'

मगर ने दुखी होकर कहा, 'यह भला मैं कैसे कर सकता हूं। मेरा वही तो एक मित्र है। उसको भला मैं कैसे मार सकता हूं।'

पत्नी ने कहा, 'अच्छी बात है। अगर तुमको तुम्हारा दोस्त ज्यादा प्यारा है तो तुम उसी के पास जाकर रहो। तुम तो चाहते हो मैं मर जाउं।'

मगर संकट में फंस गया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। बंदर का कलेजा लाता है तो उसका प्यारा दोस्त मारा जाएगा। नहीं लाता है तो उसकी पत्नी मर जाती है।

वह रोने लगा और बोला, 'मेरा एक ही तो दोस्त है। उसकी जान मैं कैसे ले सकता हूं।'

पत्नी ने कहा, 'तो क्या हुआ तुम मगर हो। मगर तो जीवों को मारते ही हैं।'

मगर जोर-जोर से रोने लगा। उसकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। पर इतना वह जरूर जानता था कि पति को पत्नी की देखभाल करनी चाहिए। उसने तय किया कि वह अपनी पत्नी का जीवन जैसे भी हो बचाएगा। यह सोचकर वह बंदर के पास गया। बंदर मगर का रास्ता देख रहा था।

उसने पूछा, 'क्यों दोस्त आज इतनी देर कैसे हो गई? सब कुशल तो है न?'

मगर ने कहा, 'मेरा और मेरी पत्नी का झगड़ा हो गया है। वह कहती कि मैं तुम्हारा दोस्त नहीं हूं क्योंकि मैंने तुम्हें अपने घर नहीं बुलाया है। वह तुमसे मिलना चाहती है। उसने कहा है कि मैं तुमको अपने साथ ले जाउं। अगर नहीं चलोगे तो वह मुझसे फिर झगड़ेगी।'

बंदर से हंस कर कहा, 'बस इतनी सी बात थी। मैं भी भाभी से मिलना चाहता था। पर मैं पानी में कैसे चलूंगा? मैं तो डूब जाउंगा।'

मगर ने कहा, 'उसकी चिंता मत करो। मैं तुमको अपनी पीठ पर बैठाकर ले जाउंगा।' बंदर राजी हो गया। वह पेड़ से उतरा और उछलकर मगर की पीठ पर सवार हो गया।

नदी के बीच में पहुंचकर मगर आगे जाने की बजाए पानी में डुबकी लगाने को था कि बंदर डर गया और बोला, 'क्या कर रहे हो भाई? डुबकी लगाई तो मैं डूब जाउंगा।'

मगर ने कहा, 'मैं तो डुबकी लगाउंगा। मैं तुमको मारने ही तो लाया हूं।'

यह सुनकर बंदर संकट में पड़ गया। उसने कहा, 'क्यों भाई मुझे क्यों मारना चाहते हो? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?'

मगर ने कहा, 'मेरी पत्नी बीमार है। वैद्य ने उसका एक ही इलाज बताया है। यदि उसको बंदर का कलेजा मिल जाए तो वह बच जाएगी। यहां और कोई बंदर नहीं है। मैं तुम्हारा कलेजा ही अपनी पत्नी को खिलाउंगा। 'पहले तो बंदर भौचक्का रह गया। फिर उसने सोचा केवल चालाकी से अपनी जान बचाई जा सकती है।

उसने कहा, 'मेरे दोस्त यह बात तुमने पहले क्यों नहीं बताई। मै तो भाभी को बचाने के लिए अपना कलेजा खुशी-खुशी दे देता। लेकिन वह तो नहीं

किनारे पेड़ पर टंगा है। मैं उसे हिफाजत के लिए वहीं रखता हूं। तुमने पहले ही बता दिया होता तो मैं उसे साथ ले आता।'

'अच्छा ऐसा है।' मगर बोला।

'हां, जल्दी वापस चलो। कहीं तुम्हारी पत्नी की बीमारी बढ़ न जाए।'

मगर वापस पेड़ की ऒर तैरने लगा और बड़ी तेजी से वहां पहुंच गया। किनारे पहुंचे ही बंदर छलांग मारकर पेड़ पर चढ़ गया। उसने हंसकर मगर से कहा, 'जाऒ मूर्खराज अपने घर लौट जाऒ। अपनी दुष्ट पत्नी से कहना कि तुम दुनिया के सबसे बड़े मूर्ख हो। भला कोई अपना कलेजा निकालकर अलग रख सकता है।'

मुश्किल वक्त पर यदि ठन्डे दिमाग से सोचा जाए तो बड़ी से बड़ी मुश्किल भी दूर हो सकती है।

नागदेव और मेढकों का राजा

एक कुएं में बहुत से मेंढक रहते थे। उनके राजा का नाम था गंगदत्त। गंगदत्त बहुत झगडालू स्वभाव का था। आसपास दो तीन और भी कुएं थे। उनमें भी मेंढक रहते थे। हर कुएं के मेंढकों का अपना राजा था। हर राजा से किसी न किसी बात पर गंगदत्त का झगडा चलता ही रहता था। वह अपनी मूर्खता से कोई ग़लत काम करने लगता और बुद्धिमान मेंढक रोकने की कोशिश करता तो मौक़ा मिलते ही अपने पाले गुंडे मेंढकों से पिटवा देता। कुएं के मेंढकों में भीतर गंगदत्त के प्रति रोष बढता जा रहा था। घर में भी झगडों से चैन न था। अपनी हर मुसीबत के लिए दोष देता।

एक दिन गंगदत्त का पडौसी मेंढक राजा से खूब झगडा हुआ। खूब तू-तू मैं-मैं हुई। गंगदत्त ने अपने कुएं में आकर बताया कि पडौसी राजा ने उसका अपमान किया हैं। अपमान का बदला लेने के लिए उसने अपने

मेंढकों को आदेश दिया कि पडौसी कुएं पर हमला करें। सब जानते थे कि झगडा गंगदत्त ने ही शुरू किया होगा।

कुछ स्याने मेंढकों तथा बुद्धिमानों ने एकजुट होकर एक स्वर में कहा 'राजन, पडौसी कुएं में हमसे दुगने मेंढक हैं। वे स्वस्थ व हमसे अधिक ताकतवर हैं। हम यह लडाई नहीं लडेंगे।'

गंगदत्त सन्न रह गया और बुरी तरह तिलमिला गया। मन ही मन में उसने ठान ली कि इन गद्दारों को भी सबक सिखाना होगा। गंगदत्त ने अपने बेटों को बुलाकर भडकाया 'बेटा, पडौसी राजा ने तुम्हारे पिताश्री का घोर अपमान किया हैं। जाओ, पडौसी राजा के बेटों की ऐसी पिटाई करो कि वे पानी मांगने लग जाएं।'

गंगदत्त के बेटे एक दूसरे का मुंह देखने लगे। आखिर बडे बेटे ने कहा 'पिताश्री, आपने कभी हमें टर्राने की इजाजत नहीं दी। टर्राने से ही मेंढकों में बल आता हैं, हौसला आता हैं और जोश आता हैं। आप ही बताइए कि बिना हौसले और जोश के हम किसी की क्या पिटाई कर पाएंगे?'

अब गंगदत्त सबसे चिढ गया। एक दिन वह कुढता और बडबडाता कुएं से बाहर निकल इधर-उधर घूमने लगा। उसे एक भयंकर नाग पास ही बने अपने बिल में घुसता नजर आया। उसकी आंखें चमकी। जब अपने दुश्मन बन गए हो तो दुश्मन को अपना बनाना चाहिए। यह सोच वह बिल के पास जाकर बोला 'नागदेव, मेरा प्रणाम।'

नागदेव फुफकारा 'अरे मेंढक मैं तुम्हारा दुश्मन हूं। तुम्हें खा जाता हूं और तू मेरे बिल के आगे आकर मुझे आवाज़ दे रहा हैं।

गंगदत्त टर्राया 'हे नाग, कभी-कभी शत्रुओं से ज़्यादा अपने दुख देने लगते हैं। मेरा अपनी जाति वालों और सगों ने इतना घोर अपमान किया हैं कि उन्हें सबक सिखाने के लिए मुझे तुम जैसे शत्रु के पास सहायता मांगने आना पडा हैं। तुम मेरी दोस्ती स्वीकार करो और मजे करो।'

नाग ने बिल से अपना सिर बाहर निकाला और बोला 'मजे, कैसे मजे?'

गंगदत्त ने कहा 'मैं तुम्हें इतने मेंढक खिलाऊंगा कि तुम मुटाते-मुटाते अजगर बन जाओगे।'

नाग ने शंका व्यक्त की 'पानी में मैं जा नहीं सकता। कैसे पकड़ूंगा मेंढक?'

गंगदत्त ने ताली बजाई 'नाग भाई, यहीं तो मेरी दोस्ती तुम्हारे काम आएगी। मैने पडौसी राजाओं के कुओं पर नजर रखने के लिए अपने जासूस मेडकों से गुप्त सुरंगें खुदवा रखी हैं। हर कुएं तक उनका रास्ता जाता हैं। सुरंगें जहां मिलती हैं। वहां एक कक्ष हैं। तुम वहां रहना और जिस-जिस मेंढक को खाने के लिए कहूं, उन्हें खाते जाना।'
नाग गंगदत्त से दोस्ती के लिए तैयार हो गया। क्योंकि उसमें उसका लाभ ही लाभ था। एक मूर्ख बदले की भावना में अंधे होकर अपनों को दुश्मन के पेट के हवाले करने को तैयार हो तो दुश्मन क्यों न इसका लाभ उठाए?

नाग गंगदत्त के साथ सुरंग कक्ष में जाकर बैठ गया। गंगदत्त ने पहले सारे पडोसी मेंढक राजाओं और उनकी प्रजाओं को खाने के लिए कहा। नाग कुछ सप्ताहों में सारे दूसरे कुओं के मेंढक सुरंगों के रास्ते जा-जाकर खा गया। जब सब समाप्त हो गए तो नाग गंगदत्त से बोला 'अब किसे खाऊं? जल्दी बता। चौबीस घंटे पेट फुल रखने की आदत पड गई हैं।'

गंगदत्त ने कहा 'अब मेरे कुएं के सभी स्यानों और बुद्धिमान मेंढकों को खाओ।'

वह खाए जा चुके तो प्रजा की बारी आई। गंगदत्त ने सोचा 'प्रजा की ऐसी तैसी। हर समय कुछ न कुछ शिकायत करती रहती हैं। उनको खाने के बाद नाग ने खाना मांगा तो गंगदत्त बोला 'नागमित्र, अब केवल मेरा कुनबा और मेरे मित्र बचे हैं। खेल खत्म और मेंढक हजम।'

नाग ने फन फैलाया और फुफकारने लगा 'मेंढक, मैं अब कहीं नहीं जाने का। तू अब खाने का इंतजाम कर वर्ना हिस्स।'

गंगदत्त की बोलती बंद हो गई। उसने नाग को अपने मित्र खिलाए फिर उसके बेटे नाग के पेट में गए। गंगदत्त ने सोचा कि मैं और मेंढकी ज़िन्दा रहे तो बेटे और पैदा कर लेंगे। बेटे खाने के बाद नाग फुफकारा 'और खाना कहां हैं? गंगदत्त ने डरकर मेंढकी की ओर इशार किया। गंगदत्त ने स्वयं के मन को समझाया 'चलो बूढी मेंढकी से छुटकारा मिला। नई जवान मेंढकी से विवाह कर नया संसार बसाऊंगा।'

मेंढकी को खाने के बाद नाग ने मुंह फाडा 'खाना।'

गंगदत्त ने हाथ जोडे 'अब तो केवल मैं बचा हूं। तुम्हारा दोस्त गंगदत्त । अब लौट जाओ।'

नाग बोला 'तू कौन-सा मेरा मामा लगता हैं और उसे हडप गया।

सीख- अपनों से बदला लेने के लिए जो शत्रु का साथ लेता है उसका अंत निश्चित है।

शेर और मूर्ख गधा

एक घने जङ्गल में केसरी नाम का शेर रहता था । उसके साथ धूरक नाम का गीदड़ भी सदा सेवाकार्य के लिए रहा करता था । शेर को एक बार एक मत्त हाथी से लड़ना पड़ा था, तब से उसके शरीर पर कई घाव हो गये थे । एक टाँग भी इस लड़ाई में टूट गई थी । उसके लिये एक क़दम चलना भी कठिन हो गया था । जङ्गल में पशुओं का शिकार करना उसकी शक्ति से बाहर था । शिकार के बिना पेट नहीं भरता था । शेर और गीदड़ दोनों भूख से व्याकुल थे । एक दिन शेर ने गीदड़ से कहा:--

"तू किसी शिकार की खोज कर के यहाँ ले आ; मैं पास में आए पशु की मार डालूँगा, फिर हम दोनों भर-पेट खाना खायेंगे ।"

गीदड़ शिकार की खोज में पास के गाँव में गया । वहाँ उसने तालाब के किनारे लम्बू नाम के गधे को हरी-हरी घास की कोमल कोंपलें खाते देखा । उसके पास जाकर बोला:-"मामा ! नमस्कार । बड़े दिनों बाद दिखाई दिये हो । इतने दुबले कैसे हो गये ?"

गधे ने उत्तर दिया :-" भांजे! क्या कहूँ ? धोबी बड़ी निर्दयता से मेरी पीठ पर बोझा रख देता है और एक कदम भी ढीला पड़ने पर लाठियों से मारता है । घास मुठ्ठीभर भी नहीं देता । स्वयं मुझे यहाँ आकर मिट्टी-मिली घास के तिनके खाने पड़ते हैं । इसीलिये दुबला होता जा रहा हूँ ।"

गीदड़ बोला:-"मामा ! यही बात है तो मैं तुझे एक जगह ऐसी बतलाता हूँ, जहां अमृत के समान स्वच्छ हरी घास के मैदान हैं, निर्मल जल का जलाशय भी पास ही है । वहां आओ और हँसते-गाते जीवन व्यतीत करो।"

लम्बू गधे ने कहा:-"बात तो ठीक है भांजे! किन्तु हम देहाती पशु हैं, वन में जङगली जानवर मार कर खा जायेंगे । इसीलिये हम वन के हरे मैदानों का उपभोग नहीं कर सकते ।"

गीदड़ :-"मामा ! ऐसा न कहो । वहाँ मेरा शासन है । मेरे रहते कोई तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं कर सकता। तुम्हारी तरह कई गधों को मैंने धोबियों के अत्याचारों से मुक्ति दिलाई है। इस समय भी वहाँ तीन गर्दभ-कन्यायें रहती हैं, जो अब जवान हो चुकी हैं। उन्होंने आते हुए मुझे कहा था कि तुम हमारी सच्ची माँ हो तो गाँव में जाकर हमारे लिये किसी अच्छे गधे को ले आओ और हमारी शादी करवा दो । इसीलिए तो मैं तुम्हारे पास आया हूँ ।"

गीदड़ की बात सुनकर लम्बू गधे ने गीदड़ के साथ चलने का निश्चय कर लिया । गीदड़ के पीछे-पीछे चलता हुआ वहु उसी वनप्रदेश में आ पहुँचा जहाँ कई दिनों का भूखा शेर भोजन की प्रतीक्षा मैं बैठा था । शेर के उठते ही लम्बकर्ण ने भागना शुरु कर दिया । उसके भागते-भागते भी शेर ने पंजा लगा दिया । लेकिन लम्बू गढ़ा शेर के पंजे में नहीं फँसा, भाग गया ।

तब, गीदड़ ने शेर से कहा:--"तुम्हारा पंजा बिल्कुल बेकार हो गया है। गधा भी उसके फन्दे से बच भागता है। क्या इसी बल पर तुम हाथी से लड़ते हो ?"

शेर ने जरा लज्जित होते हुए उत्तर दिया:-" अभी मैंने अपना पंजा तैयार भी नहीं किया था । वह अचानक ही भाग गया । अन्यथा हाथी भी इस पंजे की मार से घायल हुए बिना भाग नहीं सकता।"

गीदड़ बोला:-"अच्छा ! तो अब एक बार और यत्न करके उसे तुम्हारे पास लाता हूँ। यह प्रहार खाली न जाये ।"

शेर :-"जो गधा मुझे अपनी आँखों देख कर भागा है, वह अब कैसे आयगा ? किसी और को बेवकूफ बनाओ"

गीदड़:-"इन बातों में तुम दखल मत दो । तुम तो केवल तैयार होकर बैठ रहो ।"

गीदड़ ने देखा कि गधा उसी स्थान पर फिर घास चर रहा है ।

गीदड़ को देखकर गधे ने कहा:--" भांजे! तू भी मुझे खूब अच्छी़ जगह ले गया। एक सेकंड और हो जाता तो जीवन से हाथ धोना पड़ता । भला, वह कौन सा जानवर था जो मुझे देख कर उठा था, और जिसका वज्रसमान हाथ मेरी पीठ पर पड़ा था?"

तब हँसते हुए गीदड़ ने कहा:- "मामा ! तुम भी विचित्र हो, गाढ़ी तुम्हें देख कर गले मिलने के लिए उठी और तुम वहाँ से भाग आये। उसने तो तुम से प्रेम करने को हाथ उठाया था। वह तुम्हारे बिना जीवित नहीं रहेगी। भूखी-प्यासी मर जायगी। वह कहती है, यदि लम्बू गधा मेरा पति नहीं होगा तो मैं आग में कूद पड़ूंगी। इसलिए अभी चलो वर्ना स्त्री-हत्या का पाप तुम्हारे सिर लगेगा। चलो, मेरे साथ चलो ।"

गीदड़ की बात सुन कर गधा उसके साथ फिर जङ्गल की ओर चल दिया । वहाँ पहुँचते ही शेर उस पर टूट पडा़। उसे मार कर शेर तालाब में स्नान करने गया। गीदड़ रखवाली करता रहा। शेर को जरा देर हो गई । भूख से व्याकुल गीदड़ ने गधे के कान और दिल के हिस्से काट कर खा लिये ।

शेर जब भजन-पूजन से वापस आया तो उसने देखा कि गधे के कान नहीं थे, और दिल भी निकला हुआ था । क्रोधित होकर उसने गीदड़ से कहा:- "पापी ! तूने इसके कान और दिल खा कर इसे जूठा क्यों किया?"

गीदड़ बोला:-"स्वामी ! ऐसा न कहो। इसके कान और दिल थे ही नहीं, तभी तो यह एक बार जाकर भी वापस आ गया था ।"

शेर को गीदड़ की बात पर विश्वास हो गया । दोनों ने बाँट कर गधे का भोजन किया ।

जिसका काम उसी को साझे – कुम्हार की कथा

एक समय युधिष्ठिर नाम का कुम्हार एक बार टूटे हुए घड़े के नुकीले ठीकरे से टकरा कर गिर गया। गिरते ही वह ठीकरा उसके माथे में घुस गया। खून बहने लगा। घाव गहरा था, दवाई से भी ठीक न हुआ। घाव बढ़ता ही गया। कई महीने ठीक होने में लग गये। ठीक होने पर भी उसका निशान माथे पर रह गया।

कुछ दिन बाद अपने देश में अकाल पड़ने पर वह एक दूसरे देश में चला गया । वहाँ वह राजा के सेवकों में भर्ती हो गया। राजा ने एक दिन उसके माथे पर घाव के निशान देखे तो समझा कि यह अवश्य कोई वीर पुरुष होगा , जो लड़ाई में शत्रु का सामने से मुक़ाबिला करते हुए घायल हो गया होगा । यह समझ उसने उसे अपनी सेना में ऊँचा पद दे दिया । राजा के पुत्र व अन्य सेनापति इस सम्मान को देखकर जलते थे, लेकिन राजभय से कुछ कह नहीं सकते थे ।

कुछ दिन बाद उस राजा को लड़ाई में जाना पड़ा । वहाँ जब लड़ाई की तैयारियाँ हो रही थीं, हाथियों पर हौदे डाले जा रहे थे, घोड़ों पर काठियां चढा़ई जा रही थीं, युद्ध का बिगुल सैनिकों को युद्ध-भूमि के लिये तैयार होने का संदेश दे रहा था:- राजा ने प्रसंगवश युधिष्ठिर कुम्हार से पूछा:-" वीर ! तेरे माथे पर यह गहरा घाव किस संग्राम में कौन से शत्रु का सामना करते हुए लगा था ?"

कुम्हार ने सोचा कि अब राजा और उसमें इतनी निकटता हो चुकी है कि राजा सच्चाई जानने के बाद भी उसे मानता रहेगा। यह सोच उसने सच बात कह दी कि:--"यह घाव कोई हथियार वथियार का घाव नहीं है। मैं तो कुम्हार हूं । एक दिन शराब पीकर लड़खड़ाता हुआ जब मैं घर से निकला तो घर में बिखरे पड़े घड़ों के ठीकरों से टकरा कर गिर पड़ा। एक नुकीला ठीकरा माथे में गड़ गया । यह निशान उसका ही है ।"

राजा यह बात सुनकर बहुत लज्जित हुआ, और क्रोध से कांपते हुए बोला:- "तूने मुझे ठगकर इतना ऊँचा पद पा लिया । अभी मेरे राज्य से निकल जा।"

कुम्हार ने बहुत हाथ पैर जोड़े कि:-"मैं लड़ाई के मैदान में तुम्हारे लिये प्राण दे दूंगा, मेरा युद्ध-कौशल तो देख लो ।" किन्तु, राजा ने एक बात न सुनी ।

उसने कहा कि भले ही तुम सर्वगुणसम्पन्न हो, शूर हो, पराक्रमी हो, किन्तु हो तो कुंभकार ही । जिस कुल में तेरा जन्म हुआ है वह शूरवीरों का नहीं है। तेरी अवस्था उस गीदड़ की तरह है, जो शेरों के बच्चों में पलकर भी हाथी से लड़ने को तैयार न हुआ था"।

इसी तरह राजा ने कुम्हार से कहा कि:- तू भी, इससे पहले कि अन्य राजपुत्र तेरे कुम्हार होने का भेद जानें, और तुझे मार डालें, तू यहाँ से भागकर कुम्हारों में मिल जा ।"

अंत में कुम्हार वह राज्य छोड़कर चला गया।

जिसका काम उसी को साझे - गीदड़ की कथा

एक जंगल में शेर-शेरनी का युगल रहता था । शेरनी के दो बच्चे हुए । शेर प्रतिदिन हिरणों को मारकर शेरनी के लिये लाता था । दोनों मिलकर पेट भरते थे । एक दिन जंगल में बहुत घूमने के बाद भी शाम होने तक शेर के हाथ कोई शिकार न आया । खाली हाथ घर वापिस आ रहा था तो उसे रास्ते में गीदड़ का बच्चा मिला।

बच्चे को देखकर उसके मन में दया आ गई; उसे जीवित ही अपने मुख में सुरक्षा-पूर्वक लेकर वह घर आ गया और शेरनी के सामने उसे रखते हुए बोला:- "प्यारी! आज भोजन तो कुछ मिला नहीं । रास्ते में गीदड़ का यह बच्चा खेल रहा था । उसे जीवित ही ले आया हूँ । तुझे भूख लगी है तो इसे खाकर पेट भरले । कल दूसरा शिकार लाऊँगा ।"

शेरनी बोली:-"प्रिय ! जिसे तुमने बालक जानकर नहीं मारा, उसे मारकर मैं कैसे पेट भर सकती हूँ ! मैं भी इसे बालक मानकर ही पाल लूँगी । समझ लूँगी कि यह मेरा तीसरा बच्चा है ।"

गीदड़ का बच्चा भी शेरनी का दूध पीकर खूब पुष्ट हो गया । और शेर के अन्य दो बच्चों के साथ खेलने लगा । शेर-शेरनी तीनों को प्रेम से एक समान रखते थे ।

कुछ दिन बाद उस वन में एक मत्त हाथी आ गया । उसे देख कर शेर के दोनों बच्चे हाथी पर गुर्राते हुए उसकी ओर लपके । गीदड़ के बच्चे ने दोनों को ऐसा करने से मना करते हुए कहा:- "यह हमारा कुलशत्रु है। उसके सामने नहीं जाना चाहिये। शत्रु से दूर रहना ही ठीक है ।"

यह कहकर वह घर की ओर भागा। शेर के बच्चे भी निरुत्साहित होकर पीछे़ लौट आये ।

घर पहुँच कर शेर के दोनों बच्चों ने माँ-बाप से गीदड़ के बच्चे के भागने की शिकायत करते हुए उसकी कायरता का उपहास किया। गीदड़ का बच्चा इस उपहास से बहुत क्रोधित हो गया । लाल-लाल आंखें करके और होठों को फड़फड़ाते हुए वह उन दोनों को जली-कटी सुनाने लगा । तब, शेरनी ने उसे एकान्त में बुलाकर कहा कि:-" इतना प्रलाप करना ठीक नहीं, वे तो तेरे छो़टे भाई हैं, उनकी बात को टाल देना ही अच्छा़ है।"

गीदड़ का बच्चा शेरनी के समझाने-बुझाने पर और भी भड़क उठा और बोला:- "मैं बहादुरी में, विद्या में या कौशल में उनसे किस बात में कम हूँ, जो वे मेरी हँसी उड़ाते हैं; मैं उन्हें इसका मजा़ चखाऊँगा, उन्हें मार डालूँगा ।"

यह सुनकर शेरनी ने हँसते-हँसते कहा:-"तू बहादुर भी है, विद्वान् भी है, सुन्दर भी है, लेकिन जिस कुल में तेरा जन्म हुआ है उसमें हाथी नहीं मारे जाते। समय आ गया है कि तुझ से सच बात कह दी देनी चाहिये। तू वास्तव में गीदड़ का बच्चा है। मैंने तुझे अपना दूध देकर पाला है। पर तू हाथी नहीं मार सकता।

परन्तु इससे गीदड़ का बच्चा और भड़क गया और बोला:- मैं आज ही हाथी को मार कर ये सिद्ध कर दूंगा की मैं शेर का ही बच्चा हूँ और हाथी मार सकता हूँ। ऐसा कहकर वह दुबारा अपने दोनों भाइयों के साथ हाथी के सामने पहुँच गया और जैसे ही हाथी को मारने के लिए हाथी के ऊपर कूदा तो हाथी ने उसे सूंड से पकड़ कर जमीन पर पटक दिया। घायल लहुलुहान गिरता पडता गीदड़ वापस शेरनी के पास आया तो शेरनी ने कहा:- "मैंने पहले ही कहल था गीदड़ शेर का शिकार नहीं कर सकते, अब इससे पहले कि तेरे भाई इस सचाई को जानें, तू यहाँ से भागकर बाकी गीदड़ों के साथ रह वर्ना वो दोनों तुझे मार देंगे"

यह सुनकर वह डर से काँपता हुआ अपने गीदड़ दल में आ मिला ।

वाचाल गधा और धोबी

एक शहर में खटपट नाम का धोबी रहता था । उसके पास एक गधा भी था । घास न मिलने से वह बहुत दुबला हो गया । धोबी ने तब एक उपाय सोचा । कुछ दिन पहले जंगल में घूमते-घूमते उसे एक मरा हुआ शेर मिला था, उसकी खाल उसके पास थी । उसने सोचा यह खाल गधे को ओढ़ा कर खेत में भेज दूंगा, जिससे खेत के रखवाले इसे शेर समझकर डरेंगे और इसे मार कर भगाने की कोशिश नहीं करेंगे ।

धोबी की चाल चल गई। हर रात वह गधे को शेर की खाल पहना कर खेत में भेज देता था । गधा भी रात भर खाने के बाद घर आ जाता था।

लेकिन एक दिन यह पोल खुल गई। गधे ने एक गधी की आवाज सुन कर खुद भी ढेंचू ढेंचू चिल्लाना शुरु कर दिया । रखवाले शेर की खाल ओढ़े गधे पर टूट पड़े, और उसे इतना मारा कि बिचारा मर ही गया । उसकी वाचालता ने उसकी जान लेली ।

वाचालता : बहुत अधिक बोलना।

घमंडी का सिर नीचा

एक गांव में चकमक नाम का बढ़ई रहता था । वह बहुत गरीब था। ग़रीबी से तंग आकर वह गांव छो़ड़कर दूसरे गांव के लिये चल पड़ा। रास्ते में घना जंगल पड़ता था । वहां उसने देखा कि एक ऊंटनी प्रसवपीड़ा से तड़फड़ा रही है। ऊँटनी ने जब बच्चा दिया तो वह उँट के बच्चे और ऊँटनी को लेकर अपने घर आ गया । वहां घर के बाहर ऊँटनी को खूंटी से बांधकर वह उसके खाने के लिये पत्तों-भरी शाखायें काटने वन में गया। ऊँटनी ने हरी-हरी कोमल कोंपलें खाईं। बहुत दिन इसी तरह हरे-हरे पत्ते खाकर ऊंटनी स्वस्थ और पुष्ट हो गई। ऊँट का बच्चा भी बढ़कर जवान हो गया। बढ़ई ने उसके गले में एक घंटा बांध दिया, जिससे वह कहीं खोया न जाय।

दूर से ही उसकी आवाज सुनकर बढ़ई उसे घर ले आता था । ऊँटनी के दूध से बढ़ई के बाल-बच्चे भी पलते थे । ऊँट भार ढोने के भी काम आने लगा। उस ऊँट-ऊँटनी से ही उसका व्यापर चल निकला। यह देख उसने एक धनवान व्यक्ति से कुछ रुपया उधार लिया तथा एक और ऊँटनी ले आया। कुछ दिनों में उसके पास अनेक ऊँट-ऊँटनियां हो गईं। उनके लिये रखवाला भी रख लिया गया । बढ़ई का व्यापार चमक उठा। घर में दुधकी नदियाँ बहने लगीं।

बाकी सब तो ठीक था:-किन्तु जिस ऊँट के गले में घंटा बंधा था, वह यह सोच कर की मेरे गले मे घंटा है बाकियों के गले में नहीं - बहुत घमंडी हो गया और अपने को दूसरों से विशेष समझने लगा था। सब ऊँट वन में पत्ते खाने को जाते तो वह सबको छो़ड़कर अकेला ही जंगल में घूमा करता था।

उसके घंटे की आवाज़ से शेर को यह पता लग जाता था कि ऊँट किधर है। सबने उसे मना किया कि वह गले से घंटा उतार दे, लेकिन वह नहीं माना।

एक दिन जब सब ऊँट वन में पत्ते खाकर तालाब से पानी पीने के बाद गांव की ओर वापिस आ रहे थे, तब वह सब को छोड़कर जंगल की सैर करने अकेला चल दिया। शेर ने भी घंटे की आवाज सुनकर उसका पीछा किया। और जब वह पास आया तो उस पर झपट कर उसे मार दिया ।

उसके घमंड ने उसकी जान ले ली। घमंडी का सर हमेशा नीचा होता है

चतुर सियार

एक जंगल में महाचतुरक नामक सियार रहता था। एक दिन जंगल में उसने एक मरा हुआ हाथी देखा। उसकी बांछे खिल गईं। उसने हाथी के मृत शरीर पर दांत गड़ाया पर चमड़ी मोटी होने की वजह से, वह हाथी को चीरने में नाकाम रहा।

वह कुछ उपाय सोच ही रहा था कि उसे सिंह आता हुआ दिखाई दिया। आगे बढ़कर उसने सिंह का स्वागत किया और हाथ जोड़कर कहा,

“स्वामी आपके लिए ही मैंने इस हाथी को मारकर रखा है, आप इस हाथी का मांस खाकर मुझ पर उपकार कीजिए।” सिंह ने कहा, “मैं तो किसी के हाथों मारे गए जीव को खाता नहीं हूं, इसे तुम ही खाओ।”

सियार ने सिंह कहा महाराज आप जंगल के राजा हैं, भोग न लगाएं कोई बात नहीं कम से कं आशीर्वाद तो दे ही सकते हैं। कृपया कर इस हाथी के माथे पर अपने पंजे का निशान लगा दीजिए। सिंह सियार की चिकनी चुपड़ी बाते सुन कर बहुत खुश हुआ और उसने अपने तीखे नाखूनों से शेर के माथे पर निशान बना दिया।

सियार मन ही मन खुश तो हुआ की शेर ने हाथी का मांस नहीं खाया पर उसकी हाथी की चमड़ी को चीरने की समस्या अब भी हल न हुई थी।

थोड़ी देर में उस तरफ एक बाघ आ गया। बाघ ने मरे हाथी को देखकर अपने होंठ पर जीभ फिराई। सियार ने उसकी मंशा भांपते हुए कहा:

"मामा आप इस मृत्यु के मुंह में कैसे आ गए? सिंह ने इसे मारा है और मुझे इसकी रखवाली करने को कह गया है। देखो इसके माथे पर सिंह के पंजे का निशान। आपको पता है एक बार किसी बाघ ने उनके शिकार को जूठा कर दिया था तब से आज तक वे बाघ जाति से नफरत करने लगे हैं। आज तो हाथी को खाने वाले बाघ को वह जरुर मार गिराएंगे।"

यह सुनते ही बाघ वहां से भाग खड़ा हुआ। पर तभी एक चीता आता हुआ दिखाई दिया। सियार ने सोचा चीते के दांत तेज होते हैं। कुछ ऐसा करूं कि यह हाथी की चमड़ी भी फाड़ दे और मांस भी न खाए। उसने चीते से कहा,

"प्रिय भांजे, इधर कैसे निकले? कुछ भूखे भी दिखाई पड़ रहे हो।"

सिंह ने इसकी रखवाली मुझे सौंपी है, पर तुम इसमें से कुछ मांस खा सकते हो। मैं जैसे ही सिंह को आता हुआ देखूंगा, तुम्हें सूचना दे दूंगा, तुम सरपट भाग जाना"।

पहले तो चीते ने हाथी के माथे पर सिंह के पंजे डर से मांस खाने से मना कर दिया, पर सियार के विश्वास दिलाने पर राजी हो गया। चीते ने पलभर में हाथी की चमड़ी फाड़ दी।

जैसे ही उसने मांस खाना शुरू किया कि दूसरी तरफ देखते हुए सियार ने घबराकर कहा,

"भागो सिंह आ रहा है"।

इतना सुनना था कि चीता सरपट भाग खड़ा हुआ। सियार बहुत खुश हुआ। उसने कई दिनों तक उस विशाल जानवर का मांस खाया। सिर्फ

अपनी सूझ-बूझ से छोटे से सियार ने अपनी समस्या का हल निकाल लिया।

चतुराई से कठिन काम भी आसान हो जाता है।

कुत्ता जो विदेश गया

एक गाँव में कुत्रा नाम का कुत्ता रहता था । वहां अकाल पड़ गया । अन्न के अभाव में कई कुत्तों का वंशनाश हो गया । कुत्रा ने भी अकाल से बचने के लिये दूसरे गाँव की राह ली। वहाँ पहुँच कर उसने एक घर में चोरी से जाकर भरपेट खाना खा लिया । जिसके घर खाना खाया था उसने तो कुछ नहीं कहा, लेकिन घर से बाहर निकला तो आसपास के सब कुत्तों ने उसे घेर लिया । भयङ्कर लड़ाई हुई । कुत्रा के शरीर पर कई घाव लग गये। कुत्रा ने सोचा:-'इससे तो अपना गाँव ही अच्छा है, जहाँ केवल अकाल है, जान के दुश्मन कुत्ते तो नहीं हैं ।'

यह सोच कर वह वापिस आ गया । अपने गाँव आने पर उससे सब कुत्तों ने पूछा-"कुत्रा! दूसरे गाँव की बातसुना । वह गाँव कैसा है ? वहाँ के लोग कैसे हैं ? वहाँ खाने-पीने की चीजें कैसी हैं ?"

चित्रांग ने उत्तर दिया :-" मित्रो, उस गाँव में खाने-पीने की चीजें तो बहुत अच्छी हैं, और गृह-पत्नियाँ भी नरम स्वभाव की हैं; किन्तु दूसरे गाँव में एक ही दोष है, अपनी जाति के ही कुत्ते बड़े खूंखार हैं ।"

समान जाति वाला ही अपनी जाति के नाश की सोचता है।

धोखे का फल बुरा

एक स्थान पर एक ब्राह्मण और उसकी पत्नी बड़े प्रेम से रहते थे। किन्तु ब्राह्मणी का व्यवहार ब्राह्मण के कुटुम्बियों से अच्छा नहीं था। परिवार में कलह रहता था। प्रतिदिन के कलह से मुक्ति पाने के लिये ब्राह्मण ने मां-बाप, भाई-बहिन का साथ छोड़कर पत्नी को लेकर दूर देश में जाकर अकेले घर बसाकर रहने का निश्चय किया। यात्रा लंबी थी ।

जंगल में पहुँचने पर ब्राह्मणी को बहुत प्यास लगी । ब्राह्मण पानी लेने गया । पानी दूर था, देर लग गई। पानी लेकर वापिस आया तो ब्राह्मणी को मरी पाया। ब्राह्मण बहुत व्याकुल होकर भगवान से प्रार्थना करने लगा । उसी समय आकाशवाणी हुई कि:- "ब्राह्मण ! यदि तू अपने प्राणों का आधा भाग इसे देना स्वीकार करे तो ब्राह्मनी जीवित हो जायगी।" ब्राह्मण ने यह स्वीकार कर लिया। ब्राह्मणी फिर जीवित हो गई । दोनों ने यात्रा शुरु कर दी।

वहाँ से बहुत दूर एक नगर था । नगर के बारा में पहुँचकर ब्राह्मण ने कहा :-"प्रिये ! तुम यहीं ठहरो, मैं अभी भोजन लेकर आता हूँ।" ब्राह्मण के जाने के बाद ब्राह्मणी अकेली रह गई । उसी समय पास के कूएं पर एक लंगड़ा, किन्तु सुन्दर जवान पानी निकाल चला रहा था । ब्राह्मणी उससे हँसकर बोली। वह भी हँसकर बोला । दोनों एक दूसरे को चाहने लगे । दोनों ने जीवन भर एक साथ रहने का प्रण कर लिया।

ब्राह्मण जब भोजन लेकर नगर से लौटा तो ब्राह्मणी ने कहा:--"यह लँगड़ा व्यक्ति भी भूखा है, इसे भी अपने हिस्से में से दे दो ।" जब वहां से आगे प्रस्थान करने लगे तो ब्राह्मणी ने ब्राह्मण से अनुरोध किया कि:-"इस लँगड़े व्यक्ति को भी साथ ले लो । रास्ता अच्छा कट जायगा । तुम जब कहीं जाते हो तो मैं अकेली रह जाती हूँ। बात करने को भी कोई नहीं होता। इसके साथ रहने से कोई बात करने वाला तो रहेगा।"

ब्राह्मण ने कहा:-"हमें अपना भार उठाना ही कठिन हो रहा है, इस लँगड़े का भार कैसे उठायेंगे ?"

ब्राह्मणी ने कहा :-"हम इसे पिटारी में रख लेंगे ।"

ब्राह्मण को पत्नी की बात माननी पड़ी ।

कुछ़ दूर जाकर ब्राह्मणी और लँगड़े ने मिलकर ब्राह्मण को धोखे से कूएँ में धकेल दिया। उसे मरा समझ कर वे दोनों आगे बढ़े।

नगर की सीमा पर राज्य-कर वसूल करने की चौकी थी। राजपुरुषों ने ब्राह्मणी की पटारी को जबर्दस्ती उसके हाथ से छी्न कर खोला तो उस में वह लँगड़ा छिपा था। यह बात राज-दरबार तक पहुँची। राजा के पूछ़ने पर ब्राह्मणी ने कहा :-"यह मेरा पति है। अपने बन्धु-बान्धवों से परेशान होकर हमने देश छो्ड़ दिया है।" राजा ने उसे अपने देश में बसने की आज्ञा दे दी।

कुछ़ दिन बाद, किसी साधु के हाथों कूएँ से निकाले जाने के उपरान्त ब्राह्मण भी उसी राज्य में पहुँच गया। ब्राह्मणी ने जब उसे वहाँ देखा तो राजा से कहा कि यह मेरे पति का पुराना वैरी है, इसे यहाँ से निकाल दिया जाये, या मरवा दिया जाये। राजा ने उसके वध की आज्ञा दे दी।

ब्राह्मण ने आज्ञा सुनकर कहा :- "देव ! इस स्त्री ने मेरा कुछ लिया हुआ है। वह मुझे दिलवा दिया जाये।" राजा ने ब्राह्मणी को कहा:- "देवी ! तूने इसका जो कुछ लिया हुआ है, सब दे दे ।" ब्राह्मणी बोली:-"मैंने कुछ भी नहीं लिया।" ब्राह्मण ने याद दिलाया कि:- "तूने मेरे प्राणों का आधा भाग लिया हुआ है। सभी देवता इसके साक्षी हैं।" ब्राह्मणी ने देवताओं के भय से वह भाग वापिस करने का वचन दे दिया। किन्तु वचन देने के साथ ही वह मर गई। ब्राह्मण ने सारा वृत्तान्त राजा को सुना दिया।

परोपकार करने वाले के साथ धोखा नहीं करना चाहिए।

राजा का मजाक

एक राज्य में पराक्रमी राजा नन्द राज्य करता था। उसकी वीरता चारों दिशाओं में प्रसिद्ध थी । आसपास के सब राजा उसकी वन्दना करते थे। उसका राज्य समुद्र-तट तक फैला हुआ था। उसका मन्त्री हरि भी बड़ा विद्वान् और सब शास्त्रों में पारंगत था । उसकी पत्नी का स्वभाव बड़ा तीखा था। एक दिन वह प्रणय-कलह में ही ऐसी रुठ गई कि अनेक प्रकार से मनाने पर भी न मानी । तब, हरि ने उससे पूछा :-"प्रिये ! तेरी प्रसन्नता के लिये मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ। जो तू आदेश करेगी, वही करुँगा।" पत्नी ने कहा :-"अच्छी बात है। मेरा आदेश है कि तू गंजा होकर मेरे पैरों पर गिरकर मुझे मना, तब मैं मानूंगी ।" हरि ने वैसा ही किया । तब वह प्रसन्न हो गई ।

उसी दिन राजा नन्द की स्त्री भी रुठ गई । नन्द ने भी कहा:-"प्रिये ! तेरी अप्रसन्नता मेरी मृत्यु है । तेरी प्रसन्नता के लिये मैं सब कुछ करने के लिये तैयार हूँ । तू आदेश कर, मैं उसका पालन करुंगा ।" नन्द की रानी बोली:- "मैं चाहती हूँ कि तेरे मुख में लगाम डालकर तुझपर सवार हो जाऊँ, और तू घोड़े की तरह हिनहिनाता हुआ दौड़े। अपनी इस इच्छा के पूरी होने पर ही मैं प्रसन्न होऊँगी।" राजा ने भी उसकी इच्छा पूरी कर दी।

दूसरे दिन सुबह राज-दरबार में जब हरि आया तो राजा ने उसका मजाक उड़ाते हुए पुछा :-"मन्त्री ! किस पुण्यकाल में तू गंजा होकर आया है?"

वररुचि ने उत्तर दिया:-"राजन् ! मैं उसी पुण्य काल गंजा होकर आया हूँ, जिस काल में पुरुष मुख में लगाम डालकर हिनहिनाते हुए दौड़ते हैं।"

राजा यह सुनकर बड़ा लज्जित हुआ। किसी का मजाक नहीं उड़ाना चाहिए।

अपरीक्षितकारक

बेवकूफ नाई और लालची भिक्षु

दक्षिण प्रदेश के एक प्रसिद्ध नगर पाटलीपुत्र में मणिभद्र नाम का एक धनवान महाजन रहता था । लोक-सेवा और धर्म कार्यों में रत रहने से उसके धन-संचय में कुछ कमी आ गई, समाज में मान घट गया। इससे मणिभद्र को बहुत दुःख हुआ। दिन-रात चिन्तातुर रहने लगा। यह चिन्ता निष्कारण नहीं थी। धनहीन मनुष्य के गुणों का भी समाज में आदर नहीं होता।

उसके शील-कुल-स्वभाव की श्रेष्ठता भी दरिद्रता में दब जाती है। बुद्धि, ज्ञान और प्रतिभा के सब गुण निर्धनता के तुषार में कुम्हला जाते हैं। जैसे पतझड़ के झंझावात में मौलसरी के फूल झड़ जाते हैं, उसी तरह घर-परिवार के पोषण की चिन्ता में उसकी बुद्धि कुन्द हो जाती है। घर की घी-तेल-नमक-चावल की निरन्तर चिन्ता प्रखर प्रतिभा-संपन्न व्यक्ति की प्रतिभा को भी खा जाती है। धनहीन घर श्मसान का रुप धारण कर लेता है। प्रियदर्शना पत्नी का सौन्दर्य भी रुखा और निर्जीव प्रतीत होने लगता है। जलाशय में उठते बुलबुलों की तरह उनकी मानमर्यादा समाज में नष्ट हो जाती है।

निर्धनता की इन भयानक कल्पनाओं से मणिभद्र का दिल कांप उठा। उसने सोचा, इस अपमानपूर्ण जीवन से मृत्यु अच्छी़ है। इन्हीं विचारों में डूबा हुआ था कि उसे नींद आ गई। नींद में उसने एक स्वप्न देखा। स्वप्न में भगवान् ने एक भिक्षु की वेषभूषा में उसे दर्शन दिये, और कहा "कि वैराग्य छोड़़ दे। तेरे पूर्वजों ने मेरा भरपूर आदर किया था। इसीलिये तेरे घर आया हूँ। कल सुबह फिर इसी वेष में तेरे पास आऊँगा। उस समय तू मुझे लाठी की चोट से मार डालना। तब मैं मरकर स्वर्णमय हो जाउँगा। वह स्वर्ण तेरी ग़रीबी को हमेशा के लिए मिटा देगा ।"

सुबह उठने पर मणिभद्र इस स्वप्न की सार्थकता के संबन्ध में ही सोचता रहा। उसके मन में विचित्र शंकायें उठने लगीं। न जाने यह स्वप्न सत्य था या असत्य, यह संभव है या असंभव, इन्हीं विचारों में उसका मन डांवाडोल हो रहा था। हर समय धन की चिन्ता के कारण ही शायद उसे धनसंचय का स्वप्न आया था। उसे किसी के मुख से सुनी हुई यह बात याद आ गई कि रोगग्रस्त, शोकातुर, चिन्ताशील और कामार्त्त मनुष्य के स्वप्न निरथक होते हैं। उनकी सार्थकता के लिए आशावादी होना अपने को धोखा देना है।

मणिभद्र यह सोच ही रहा था कि स्वप्न में देखे हुए भिक्षु के समान ही एक भिक्षु अचानक वहां आ गया। उसे देखकर मणिभद्र का चेहरा खिल गया, सपने की बात याद आ गई। उसने पास में पड़ी लाठी उठाई और भिक्षु के सिर पर मार दी। भिक्षु उसी क्षण मर गया। भूमि पर गिरने के साथ ही उसका सारा शरीर स्वर्णमय हो गया। मणिभद्र ने उसका स्वर्णमय मृतदेह छिपा लिया।

किन्तु, उसी समय एक नाई वहां आ गया था। उसने यह सब देख लिया था। मणिभद्र ने उसे पर्याप्त धन-वस्त्र आदि का लोभ देकर इस घटना को गुप्त रखने का आग्रह किया। नाई ने वह बात किसी और से तो नहीं कही, किन्तु धन कमाने की इस सरल रीति का स्वयं प्रयोग करने का निश्चय कर लिया। उसने सोचा यदि एक भिक्षु लाठी से चोट खाकर स्वर्णमय हो सकता है तो दूसरा क्यों नहीं हो सकता। मन ही मन ठान ली कि वह भी कल सुबह कई भिक्षुओं को स्वर्णमय बनाकर एक ही दिन में मणिभद्र की तरह श्रीसंपन्न हो जाएगा। इसी आशा से वह रात भर सुबह होने की प्रतीक्षा करता रहा, एक पल भी नींद नहीं ली।

सुबह उठकर वह भिक्षुओं की खोज में निकला। पास ही एक भिक्षुओं का मन्दिर था। मन्दिर की तीन परिक्रमायें करने और अपनी मनोरथसिद्धि के लिये भगवान बुद्ध से वरदान मांगने के बाद वह मन्दिर के प्रधान भिक्षु के पास गया, उसके चरणों का स्पर्श किया और उचित वन्दना के बाद यह

विनम्र निवेदन किया कि:-"आज की भिक्षा के लिये आप समस्त भिक्षुओं समेत मेरे द्वार पर पधारें।"

प्रधान भिक्षु ने नाई से कहा:-"तुम शायद हमारी भिक्षा के नियमों से परिचित नहीं हो। हम उन ब्राह्मणों के समान नहीं हैं जो भोजन का निमन्त्रण पाकर गृहस्थों के घर जाते हैं। हम भिक्षु हैं, जो यथेच्छा से घूमते-घूमते किसी भी भक्तश्रावक के घर चले जाते हैं और वहां उतना ही भोजन करते हैं जितना प्राण धारण करने मात्र के लिये पर्याप्त हो। अतः, हमें निमन्त्रण न दो। अपने घर जाओ, हम किसी भी दिन तुम्हारे द्वार पर अचानक आ जायेंगे।"

नाई को प्रधान भिक्षु की बात से कुछ निराशा हुई, किन्तु उसने नई युक्ति से काम लिया। वह बोला:-"मैं आपके नियमों से परिचित हूं, किन्तु मैं आपको भिक्षा के लिये नहीं बुला रहा। मेरा उद्देश्य तो आपको पुस्तक-लेखन की सामग्री देना है। इस महान् कार्य की सिद्धि आपके आये बिना नहीं होगी।" प्रधान भिक्षु नाई की बात मान गया। नाई ने जल्दी से घर की राह ली। वहां जाकर उसने लाठियां तैयार कर लीं, और उन्हें दरवाजे के पास रख दिया। तैयारी पूरी हो जाने पर वह फिर भिक्षुओं के पास गया और उन्हें अपने घर की ओर ले चला। भिक्षु-वर्ग भी धन-वस्त्र के लालच से उसके पीछे-पीछे चलने लगा। भिक्षुओं के मन में भी तृष्णा का निवास रहता ही है। जगत् के सब प्रलोभन छोड़ने के बाद भी तृष्णा संपूर्ण रुप से नष्ट नहीं होती। उनके देह के अंगों में जीर्णता आ जाती है, बाल रुखे हो जाते हैं, दांत टूट कर गिर जाते हैं, आंख-कान बूढ़े हो जाते हैं, केवल मन की तृष्णा ही है जो अन्तिम श्वास तक जवान रहती है ।

उनकी तृष्णा ने ही उन्हें ठग लिया। नाई ने उन्हें घर के अन्दर लेजाकर लाठियों से मारना शुरु कर दिया। उनमें से कुछ तो वहीं धराशायी हो गये, और कुछ का सिर फूट गया। उनका कोलाहल सुनकर लोग एकत्र हो गये। नगर के द्वारपाल भी वहाँ आ पहुँचे। वहाँ आकर उन्होंने देखा कि अनेक भिक्षुओं का मृतदेह पड़ा है, और अनेक भिक्षु आहत होकर प्राण-रक्षा के लिये इधर-उधर दौड़ रहे हैं।

नाई से जब इस रक्तपात का कारण पूछा़ गया तो उसने मणिभद्र के घर में आहत भिक्षु के स्वर्णमय हो जाने की बात बतलाते हुए कहा कि वह भी शीघ्र स्वर्ण संचय करना चाहता था। नाई के मुख से यह बात सुनने के बाद राज्य के अधिकारियों ने मणिभद्र को बुलाया और पूछा कि:-"क्या तुमने किसी भिक्षु की हत्या की है?"

मणिभद्र ने अपने स्वप्न की कहानी आरंभ से लेकर अन्त तक सुना दी। राज्य के धर्माधिकारियों ने उस नाई को मृत्युदण्ड की आज्ञा दी। और कहा:--ऐसे 'कुपरीक्षितकारी':-बिना सोचे काम करने वाले के लिये यही दण्ड उचित था। मनुष्य को उचित है कि वह अच्छी़ तरह देखे, जाने, सुने और उचित परीक्षा किये बिना कोई भी कार्य न करे। अन्यथा उसका वही परिणाम होता है जो इस कहानी के नाई का हुआ ।

ब्राह्मणी और नेवला

एक बार देवशर्मा नाम के ब्राह्मण के घर जिस दिन पुत्र का जन्म हुआ उसी दिन उसके घर में रहने वाली नकुली ने भी एक नेवले को जन्म दिया। देवशर्मा की पत्नी बहुत दयालु स्वभाव की स्त्री थी। उसने उस छो़टे नेवले को भी अपने पुत्र के समान ही पाल-पोसा और बड़ा किया। वह नेवला सदा उसके पुत्र के साथ खेलता था। दोनों में बड़ा प्रेम था। देवशर्मा की पत्नी भी दोनों के प्रेम को देखकर प्रसन्न थी। किन्तु, उसके मन में यह शंका हमेशा रहती थी कि कभी यह नेवला उसके पुत्र को न काट खाये। पशु के बुद्धि नहीं होती, मूर्खतावश वह कोई भी अनिष्ट कर सकता है।

एक दिन उसकी इस आशंका का बुरा परिणाम निकल आया। उस दिन देवशर्मा की पत्नी अपने पुत्र को एक वृक्ष की छा़या में सुलाकर स्वयं पास के जलाशय से पानी भरने गई थी। जाते हुए वह अपने पति देवशर्मा से कह गई थी कि वहीं ठहर कर वह पुत्र की देख-रेख करे, कहीं ऐसा न हो कि नेवला उसे काट खाये। पत्नी के जाने के बाद देवशर्मा ने सोचा, 'कि

नेवले और बच्चे में गहरी मैत्री है, नेवला बच्चे को हानि नहीं पहुँचायेगा।' यह सोचकर वह अपने सोये हुए बच्चे और नेवले को वृक्ष की छा़या में छो़ड़कर स्वयं भिक्षा के लोभ से कहीं चल गया पड़ा।

उसी समय एक काला नाग पास के बिल से बाहिर निकला। नेवले ने उसे देख लिया। उसे डर हुआ कि कहीं यह उसके मित्र को न डस ले, इसलिये वह काले नाग पर टूट पड़ा, और स्वयं बहुत क्षत-विक्षत होते हुए भी उसने नाग के खंड-खंड कर दिये।

सांप को मारने के बाद वह उसी दिशा में चल पड़ा, जिधर देवशर्मा की पत्नी पानी भरने गई थी। उसने सोचा कि वह उसकी वीरता की प्रशंसा करेगी, किन्तु हुआ इसके विपरीत।

उसकी खून से सनी देह को देखकर ब्राह्मण पत्नी का मन उन्हीं पुरानी आशङ्काओं से भर गया कि कहीं इसने उसके पुत्र की हत्या न कर दी हो । यह विचार आते ही उसने क्रोध से सिर पर उठाये घड़े को नेवले पर फैंक दिया। छो़टा सा नेवला जल से भारी घड़े की चोट खाकर वहीं मर गया । ब्राह्मण-पत्नी वहाँ से भागती हुई वृक्ष के नीचे पहुँची। वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि उसका पुत्र बड़ी शान्ति से सो रहा है, और उससे कुछ दूरी पर एक काले साँप का शरीर खँड-खँड हुआ पड़ा है। तब उसे नेवले की वीरता का ज्ञान हुआ। पश्चात्ताप से उसकी छा़ती फटने लगी ।

इसी बीच ब्राह्मण देवशर्मा भी वहाँ आ गया। वहाँ आकर उसने अपनी पत्नी को विलाप करते देखा तो उसका मन भी सशंकित हो गया । किन्तु पुत्र को कुशलपूर्वक सोते देख उसका मन शान्त हुआ। पत्नी ने अपने पति देवशर्मा को रोते-रोते नेवले की मृत्यु का समाचार सुनाया और कहा:-"मैं तुम्हें यहीं ठहर कर बच्चे की देख-भाल के लिये कह गई थी । तुमने भिक्षा के लोभ से मेरा कहना नहीं माना । इसी से यह परिणाम हुआ।

बिना विचारे जो करे सो पाछे पछताय

मस्तक पर चक्र

एक नगर में चार ब्राह्मण पुत्र रहते थे। चारों में गहरी मैत्री थी। चारों ही निर्धन थे। निर्धनता को दूर करने के लिए चारों चिन्तित थे। उन्होंने अनुभव कर लिया था कि अपने बन्धु-बान्धवों में धनहीन जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा शेर-हाथियों से भरे कंटीले जङ्गल में रहना अच्छा् है। निर्धन व्यक्ति को सब अनादर की दृष्टि से देखते हैं, बन्धु-बान्धव भी उस से किनारा कर लेते हैं, अपने ही पुत्र-पौत्र भी उस से मुख मोड़ लेते हैं, पत्नी भी उससे विरक्त हो जाती है। संसार में धन के बिना न यश संभव है, न सुख। धन हो तो कायर भी वीर हो जाता है, कुरुप भी सुरुप कहलाता है, और मूर्ख भी पंडित बन जाता है।

यह सोचकर उन्होंने धन कमाने के लिये किसी दूसरे देश को जाने का निश्चय किया। अपने बन्धु-बान्धवों को छो्ड़ा, अपनी जन्म-भूमि से विदा ली और विदेश-यात्रा के लिये चल पड़े।

चलते-चलते क्षिप्रा नदी के तट पर पहुँचे। वहाँ नदी के शीतल जल में स्नान करने के बाद महाकाल को प्रणाम किया। थोड़ी दूर आगे जाने पर उन्हें एक जटाजूटधारी योगी दिखाई दिये। इन योगिराज का नाम भैरवानन्द था। योगिराज इन चारों नौजवान ब्राह्मणपुत्रों को अपने आश्रम में ले गए और उनसे प्रवास का प्रयोजन पूछा्। चारों ने कहा:--"हम अर्थ-सिद्धि के लिये यात्री बने हैं। धनोपार्जन ही हमारा लक्ष्य है। अब या तो धन कमा कर ही लौटेंगे या मृत्यु का स्वागत करेंगे। इस धनहीन जीवन से मृत्यु अच्छी है।"

योगिराज ने उनके निश्चय की परीक्षा के लिये जब यह कहा कि धनवान बनना तो दैव के अधीन है, तब उन्होंने उत्तर दिया:- "यह सच है कि भाग्य ही पुरुष को धनी बनाता है, किन्तु साहसिक पुरुष भी अवसर का लाभ उठा कर अपने भाग्य को बदल लेते हैं। पुरुष का पौरुष कभी-कभी दैव से भी अधिक बलवान हो जाता है। इसलिए आप हमें भाग्य का नाम लेकर

निरुत्साहित न करें। हमने अब धनोपार्जन का प्रण पूरा करके ही लौटने का निश्चय किया है। आप अनेक सिद्धियों को जानते हैं। आप चाहें तो हमें सहायता दे सकते हैं, हमारा पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं। योगी होने के कारण आपके पास महती शक्तियाँ हैं। हमारा निश्चय भी महान् है। महान् ही महान् की सहायता कर सकता है।"

भैरवानन्द को उनकी दृढ़ता देखकर प्रसन्नता हुई। प्रसन्न होकर धन कमाने का एक रास्ता बतलाते हुए उन्होंने कहा:- "तुम हाथों में दीपक लेकर हिमालय पर्वत की ओर जाओ । वहाँ जाते-जाते जब तुम्हारे हाथ का दीपक नीचे गिर पड़े तो ठहर जाओ। जिस स्थान पर दीपक गिरे उसे खोदो। वहीं तुम्हें धन मिलेगा। धन लेकर वापिस चले आओ।"

चारों युवक हाथों में दीपक लेकर चल पड़े। कुछ दूर जाने के बाद उन में से एक के हाथ का दीपक भूमि पर गिर पड़ा। उस भूमि को खोदने पर उन्हें ताम्रमयी भूमि मिली। वह तांबे की खान थी। उसने कहा:-"यहाँ जितना चाहो, ताँबा ले लो ।" अन्य युवक बोले:-"मूर्ख ! ताँबे से दरिद्रता दूर नहीं होगी । हम आगे बढ़ेंगे। आगे इस से अधिक मूल्य की वस्तु मिलेगी।"

उसने कहा:-"तुम आगे जाओ, मैं तो यहीं रहूँगा।" यह कहकर उसने यथेष्ट ताँबा लिया और घर लौट आया।

शेष तीनों मित्र आगे बढ़े। कुछ दूर आगे जाने के बाद उन में से एक के हाथ का दीपक जमीन पर गिर पड़ा । उसने जमीन खोदी तो चाँदी की खान पाई । प्रसन्न होकर वह बोला:--"यहाँ जितनी चाहो चाँदी ले लो, आगे मत जाओ ।" शेष दो मित्र बोले:-"पीछे ताँबे की खान मिली थी, यहाँ चाँदी की खान मिली है; निश्चय ही आगे सोने की खान मिलेगी । इसलिये हम तो आगे ही बढ़ेंगे।" यह कहकर दोनों मित्र आगे बढ़ गये।

उन दो में से एक के हाथ से फिर दीपक गिर गया । खोदने पर उसे सोने की खान मिल गई । उसने कहा:-"यहाँ जितना चाहो सोना ले लो। हमारी दरिद्रता का अन्त हो जायगा। सोने से उत्तम कौन-सी चीज है। आओ,

सोने की खान से यथेष्ट सोना खोद लें और घर ले चलें।" उसके मित्र ने उत्तर दिया:--"मूर्ख ! पहिले ताँबा मिला था, फिर चाँदी मिली, अब सोना मिला है; निश्चय ही आगे रत्नों की खान होगी। सोने की खान छोड़ दे और आगे चल।" किन्तु, वह न माना । उसने कहा:--"मैं तो सोना लेकर ही घर चला जाऊँगा, तूने आगे जाना है तो जा।"

अब वह चौथा युवक एकाकी आगे बढ़ा । रास्ता बड़ा विकट था। काँटों से उसका पैर छ्लनी हो गया। बर्फ़ीले रास्तों पर चलते-चलते शरीर जीर्ण-शीर्ण हो गया, किन्तु वह आगे ही आगे बढ़ता गया ।

बहुत दूर जाने के बाद उसे एक मनुष्य मिला, जिसका सारा शरीर खून से लथपथ था , और जिसके मस्तक पर चक्र घूम रहा था । उसके पास जाकर चौथा युवक बोला:--"तुम कौन हो ? तुम्हारे मस्तक पर चक्र क्यों घूम रहा है ? यहाँ कहीं जलाशय है तो बतलाओ, मुझे प्यास लगी है ।"

यह कहते ही उसके मस्तक का चक्र उतर कर ब्राह्मणयुवक के मस्तक पर लग गया । युवक के आश्चर्य की सीमा न रही । उसने कष्ट से कराहते हुए पूछा:--"यह क्या हुआ ? यह चक्र तुम्हारे मस्तक से छूटकर मेरे मस्तक पर क्यों लग गया ?"

अजनबी मनुष्य ने उत्तर दिया:--"मेरे मस्तक पर भी यह इसी तरह अचानक लग गया था। अब यह तुम्हारे मस्तक से तभी उतरेगा जब कोई व्यक्ति धन के लोभ में घूमता हुआ यहाँ तक पहुँचेगा और तुम से बात करेगा ।"

युवक ने पूछा:--"यह कब होगा ?"

अजनबी:-"अब कौन राजा राज्य कर रहा है ?"

युवक:--"वीणा वत्सराज ।"

अजनबी:--"मुझे काल का ज्ञान नहीं। मैं राजा राम के राज्य में दरिद्र हुआ था, और सिद्धि का दीपक लेकर यहाँ तक पहुँचा था। मैंने भी एक और मनुष्य से यही प्रश्न किये थे, जो तुम ने मुझ से किये हैं ।"

युवक :--"किन्तु, इतने समय में तुम्हें भोजन व जल कैसे मिलता रहा ?"

अजनबी :--"यह चक्र धन के अति लोभी पुरुषों के लिये बना है। इस चक्र के मस्तक पर लगने के बाद मनुष्य को भूख, प्यास, नींद, जरा, मरण आदि नहीं सताते। केवल चक्र घूमने का कष्ट ही सताता रहता है। वह व्यक्ति अनन्त काल तक कष्ट भोगता है ।"

यह कहकर वह चला गया । और वह अति लोभी ब्राह्मण युवक कष्ट भोगने के लिए वहीं रह गया ।

जब शेर जी उठा: मूर्ख वैज्ञानिक

एक नगर में चार मित्र रहते थे। उनमें से तीन बड़े वैज्ञानिक थे, किन्तु मूर्ख थे; चौथा वैज्ञानिक नहीं था, किन्तु बुद्धिमान् था। चारों ने सोचा कि विद्या का लाभ तभी हो सकता है, यदि वे विदेशों में जाकर धन संग्रह करें। इसी विचार से वे विदेशयात्रा को चल पड़े।

कुछ दूर जाकर उनमें से सब से बड़े ने कहा-"हम चारों विद्वानों में एक विद्या-शून्य है, वह केवल बुद्धिमान् है। धनोपार्जन के लिये और धनिकों की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये विद्या आवश्यक है। विद्या के चमत्कार से ही हम उन्हें प्रभावित कर सकते हैं। अतः हम अपने धन का कोई भी भाग इस विद्याहीन को नहीं देंगे। वह चाहे तो घर वापिस चला जाये।"

दूसरे ने इस बात का समर्थन किया। किन्तु, तीसरे ने कहा:-"यह बात उचित नहीं है । बचपन से ही हम एक दूसरे के सुख-दुःख के सहभागी रहे हैं। हम जो भी धन कमायेंगे, उसमें इसका हिस्सा रहेगा। अपने-पराये की

गणना छो़टे दिल वालों का काम है। उदार-चरित व्यक्तियों के लिये सारा संसार ही अपना कुटुम्ब होता है। हमें उदारता दिखलानी चाहिये।"

उसकी बात मानकर चारों आगे चल पड़े। थोड़ी दूर जाकर उन्हें जंगल में एक शेर का मृत-शरीर मिला । उसके अंग-प्रत्यंग बिखरे हुए थे। तीनों विद्याभिमानी युवकों ने कहा, "आओ, हम अपनी विज्ञान की शिक्षा की परीक्षा करें। विज्ञान के प्रभाव से हम इस मृत-शरीर में नया जीवन डाल सकते हैं।" यह कह कर तीनों उसकी हड्डियां बटोरने और बिखरे हुए अंगों को मिलाने में लग गये। एक ने अस्थिसंचय किया, दूसरे ने चर्म, मांस, रुधिर संयुक्त किया, तीसरे ने प्राणों के संचार की प्रक्रिया शुरु की इतने में विज्ञान-शिक्षा से रहित, किन्तु बुद्धिमान् मित्र ने उन्हें सावधान करते हुए कहा:-"जरा ठहरो । तुम लोग अपनी विद्या के प्रभाव से शेर को जीवित कर रहे हो। वह जीवित होते ही तुम्हें मारकर खाजायेगा ।"
वैज्ञानिक मित्रों ने उसकी बात को अनसुना कर दिया। तब वह बुद्धिमान् बोला:-"यदि तुम्हें अपनी विद्या का चमत्कार दिखलाना ही है तो दिखलाओ। लेकिन एक क्षण ठहर जाओ, मैं वृक्ष पर चढ़ जाऊँ।" यह कहकर वह वृक्ष पर चढ़ गया।

इतने में तीनों वैज्ञानिकों ने शेर को जीवित कर दिया। जीवित होते ही शेर ने तीनों पर हमला कर दिया और तीनों को मार कर खा गया।

अतः विद्या में कुशल होना ही पर्याप्त नहीं है। लोक-व्यवहार को समझने और लोकाचार के अनुकूल काम करने की बुद्धि भी होनी चाहिये। अन्यथा लोकाचार-हीन विद्वान् भी मूर्ख-पंडितों की तरह उपहास के पात्र बनते हैं।"

चार मूर्ख ब्राह्मणों

एक स्थान पर चार ब्राह्मण रहते थे। चारों विद्याभ्यास के लिये कान्यकुब्ज गये। निरन्तर १२ वर्ष तक विद्या पढ़ने के बाद वे सम्पूर्ण शास्त्रों के पारंगत विद्वान् हो गये, किन्तु व्यवहार-बुद्धि से चारों खाली थे। विद्याभ्यास के बाद

चारों स्वदेश के लिये लौट पड़े। कुछ देर चलने के बाद रास्ता दो ओर जाता था। 'किस मार्ग से जाना चाहिये,' इसका कोई भी निश्चय न करने पर वे वहीं बैठ गये। इसी समय वहां से एक मृत वैश्य बालक की अर्थी निकली।

अर्थी के साथ बहुत से महाजन भी थे। 'महाजन' नाम से उनमें से एक को कुछ याद आ गया। उसने पुस्तक के पन्ने पलटकर देखा तो लिखा था - "महाजनो येन गतः स पन्थाः"

अर्थात् जिस मार्ग से महाजन जाये, वही मार्ग है। पुस्तक में लिखे को ब्रह्म-वाक्य मानने वाले चारों पंडित महाजनों के पीछे-पीछे श्मशान की ओर चल पड़े।

थोड़ी दूर पर श्मशान में उन्होंने एक गधे को खड़ा हुआ देखा। गधे को देखते ही उन्हें शास्त्र की यह बात याद आ गई "राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः"- अर्थात् राजद्वार और श्मशान में जो खड़ा हो, वह भाई होता है। फिर क्या था, चारों ने उस श्मशान में खड़े गधे को भाई बना लिया। कोई उसके गले से लिपट गया, तो कोई उसके पैर धोने लगा।

इतने में एक ऊँट उधर से गुज़रा। उसे देखकर सब विचार में पड़ गये कि यह कौन है। १२ वर्ष तक विद्यालय की चारदीवारी में रहते हुएअ उन्हें पुस्तकों के अतिरिक्त संसार की किसी वस्तु का ज्ञान नहीं था। ऊँट को वेग से भागते हुए देखकर उनमें से एक को पुस्तक में लिखा यह वाक्य याद आ गया:--"धर्मस्य त्वरिता गतिः":--अर्थात् धर्म की गति में बड़ा वेग होता है। उन्हें निश्चय हो गया कि वेग से जाने वाली यह वस्तु अवश्य धर्म है। उसी समय उनमें से एक को याद आया:--"इष्टं धर्मेण योजयेत् " :- अर्थात् धर्म का संयोग इष्ट से करादे। उनकी समझ में इष्ट बान्धव था गधा और ऊँट या धर्म; दोनों का संयोग कराना उन्होंने शास्त्रोक्त मान लिया। बस, खींचखांच कर उन्होंने ऊँट के गले में गधा बाँध दिया । वह गधा एक धोबी का था। उसे पता लगा तो वह भागा हुआ आया। उसे अपनी ओर आता देखकर चारों शास्त्र-पारंगत पंडित वहाँ से भाग खड़े हुए।

थोड़ी दूर पर एक नदी थी । नदी में पलाश का एक पत्ता तैरता हुआ आ रहा था । इसे देखते ही उनमें से एक को याद आ गया- "आगमिष्यति यत्पत्रं तदस्मांस्तारयिष्यति" अर्थात् जो पत्ता तैरता हुआ आयगा, वही हमारा उद्धार करेगा। उद्धार की इच्छा से वह मूर्ख पंडित पत्ते पर लेट गया। पत्ता पानी में डूब गया तो वह भी डूबने लगा।

केवल उसकी शिक्षा पानी से बाहिर रह गई। इसी तरह बहते-बहते जब वह दूसरे मूर्ख पंडित के पास पहुँचा तो उसे एक और शास्त्रोक्त वाक्य याद आ गया:--"सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पंडितः":-अर्थात् सम्पूर्ण का नाश होते देखकर आधे को बचाले और आधे का त्याग कर दे। यह याद आते ही उसने बहते हुए पूरे आदमी का आधा भाग बचाने के लिये उसके बाल पकड़ कर गरदन काट दी। उसके हाथ में केवल सिर का हिस्सा आ गया। शरीर पानी में बह गया ।

उन चार के अब तीन रह गये। गाँव पहुँचने पर तीनों को अलग-अलग घरों में ठहराया गया। वहां उन्हें जब भोजन दिया गया तो एक ने सेवईयों को यह कहकर छोड़ दिया :-"दीर्घसूत्री विनश्यति":- अर्थात् लम्बे तन्तु वाली वस्तु नष्ट हो जाती है । दूसरे को रोटियां दी गईं तो उसे याद आ गया:- "अतिविस्तारविस्तीर्णं तद्भवेन्न चिरायुषम् " अर्थात् बहुत फैली हुई वस्तु आयु को घटाती है। तीसरे को छिद्र वाला वडा दिया गया तो उसे याद आ गया:--'छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति':-अर्थात् छिद्र वाली वस्तु में बहुत अनर्थ होते हैं। परिणाम यह हुआ कि तीनों की मूर्खता की जगहँसाई हुई और तीनों भूखे भी रहे।

दो मछलियों और एक मेंढक की कहानी

एक तालाब में दो मछ्लियाँ रहती थीं । एक थी शतबुद्धि (सौ बुद्धियों वाली), दूसरी थी सहस्त्रबुद्धि (हजार बुद्धियों वाली) । उसी तालाब में एक मेंढक भी रहता था । उसका नाम था एकबुद्धि। उसके पास एक ही बुद्धि

थी। इसलिये उसे बुद्धि पर अभिमान नहीं था। शतबुद्धि और सहस्त्रबुद्धि को अपनी चतुराई पर बड़ा अभिमान था।

एक दिन शाम के समय तीनों तालाब के किनारे बात-चीत कर रहे थे। उसी समय उन्होंने देखा कि कुछ मछुआरे हाथों में जाल लेकर वहाँ आये। उनके जाल में बहुत सी मछलियाँ फँस कर तड़प रही थीं। तालाब के किनारे आकर मछियारे आपस में बात करने लगे। एक ने कहा - "इस तालाब में खूब मछलियाँ हैं, पानी भी कम है। कल हम यहाँ आकर मछलियां पकड़ेंगे।"

सबने उसकी बात का समर्थन किया। कल सुबह वहाँ आने का निश्चय करके मछुआरे चले गये। उनके जाने के बाद सब मछलियों ने सभा की। सभी चिन्तित थे कि क्या किया जाय। सब की चिन्ता का उपहास करते हुये सहस्त्रबुद्धि ने कहा:--"डरो मत, दुनियां में सभी दुर्जनों के मन की बात पूरी होने लगे तो संसार में किसी का रहना कठिन हो जाय। सांपों और दुष्टों के अभिप्राय कभी पूरे नहीं होते; इसीलिये संसार बना हुआ है। किसी के कथनमात्र से डरना कायरों का काम है। पहले तो वह यहाँ आयेंगे ही नहीं, यदि आ भी गये तो मैं अपनी बुद्धि के प्रभाव से सब की रक्षा कर लूँगी।"

शतबुद्धि ने भी उसका समर्थन करते हुए कहा - "बुद्धिमान के लिए संसार में सब कुछ संभव है। जहां वायु और प्रकाश की भी गति नहीं होती, वहां बुद्धिमानों की बुद्धि पहुँच जाती है। किसी के कहने से ही हम अपने पूर्वजों की भूमि को नहीं छोड़ सकते। अपनी जन्मभूमि में जो सुख होता है वह स्वर्ग में भी नहीं होता। भगवान ने हमें बुद्धि दी है, भय से भागने के लिए नहीं, बल्कि भय का युक्तिपूर्वक सामना करने के लिए।"

तालाब की मछलियों को तो शतबुद्धि और सहस्त्रबुद्धि के आश्वासन पर भरोसा हो गया, लेकिन एकबुद्धि मेंढक ने कहा:--"मित्रो ! मेरे पास तो एक ही बुद्धि है; वह मुझे यहां से भाग जाने की सलाह देती है। इसलिए मैं तो सुबह होने से पहले ही इस तालाब को छोड़कर अपनी पत्नी के साथ

दूसरे तालाब में चला जाऊँगा।" यह कहकर वह मेंढक मेंढकी को लेकर तालाब से चला गया ।

दूसरे दिन अपने वचनानुसार वही मछुआरे वहाँ आय । उन्होंने तालाब में जाल बिछा दिया। तालाब की सभी मछलियां जाल में फँस गईं। शतबुद्धि और सहस्त्रबुद्धि ने बचाव के लिए बहुत से पैंतरे बदले, किन्तु मछुआरे भी अनाड़ी नहीं थे। उन्होंने चुन-चुन कर सब मछलियों को जाल में बांध लिया। सबने तड़प-तड़प कर प्राण दिये ।

सन्ध्या समय मछियारों ने मछलियों से भरे जाल को कन्धे पर उठा लिया। शतबुद्धि और सहस्त्रबुद्धि बहुत भारी मछलियां थीं, इसीलिए इन दोनों को उन्होंने कन्धे पर और हाथों पर लटका लिया था। उनकी दुरवस्था देखकर मेंढक ने मेंढकी से कहा-

"देख प्रिये ! मैं कितना दूरदर्शी हूं । जिस समय शतबुद्धि कन्धों पर और सहस्त्रबुद्धि हाथों में लटकी जा रही है, उस समय मैं एकबुद्धि इस छोटे से जलाशय के निर्मल जल में सानन्द विहार कर रहा हूँ । इसलिए मैं कहता हूँ कि विद्या से बुद्धि का स्थान ऊँचा है, और बुद्धि में भी सहस्त्रबुद्धि की अपेक्षा एकबुद्धि होना अधिक व्यावहारिक है।"

संगीतप्रिय गधा

एक धोबी का गधा था। वह दिन भर कपडों के गट्ठर इधर से उधर ढोने में लगा रहता। धोबी स्वयं कंजूस और निर्दयी था। अपने गधे के लिए चारे का प्रबंध नहीं करता था। बस रात को चरने के लिए खुला छोड देता। निकट में कोई चरागाह भी नहीं थी। शरीर से गधा बहुत दुर्बल हो गया था।

एक रात उस गधे की मुलाकात एक गीदड़ से हुई। गीदड़ ने उससे पूछा 'कहिए महाशय, आप इतने कमज़ोर क्यों हैं?'

गधे ने दुखी स्वर में बताया कि कैसे उसे दिन भर काम करना पडता है। खाने को कुछ नहीं दिया जाता। रात को अंधेरे में इधर-उधर मुंह मारना पडता है।

गीदड़ बोला 'तो समझो अब आपकी भुखमरी के दिन गए। यहां पास में ही एक बडा सब्जियों का बाग़ है। वहां तरह-तरह की सब्जियां उगी हुई हैं। खीरे, ककडियां, तोरई, गाजर, मूली, शलगम और बैंगनों की बहार है। मैंने बाड तोडकर एक जगह अंदर घुसने का गुप्त मार्ग बना रखा है। बस वहां से हर रात अंदर घुसकर छककर खाता हूं और सेहत बना रहा हूं। तुम भी मेरे साथ आया करो।' लार टपकाता गधा गीदड़ के साथ हो गया।

बाग़ में घुसकर गधे ने महीनों के बाद पहली बार भरपेट खाना खाया। दोनों रात भर बाग़ में ही रहे और पौ फटने से पहले गीदड़ जंगल की ओर चला गया और गधा अपने धोबी के पास आ गया।

उसके बाद वे रोज रात को एक जगह मिलते। बाग़ में घुसते और जी भरकर खाते। धीरे-धीरे गधे का शरीर भरने लगा। उसके बालों में चमक आने लगी और चाल में मस्ती आ गई। वह भुखमरी के दिन बिल्कुल भूल गया। एक रात खूब खाने के बाद गधे की तबीयत अच्छी तरह हरी हो गई। वह झूमने लगा और अपना मुंह ऊपर उठाकर कान फडफडाने लगा। गीदड़ ने चिंतित होकर पूछा 'मित्र, यह क्या कर रहे हो? तुम्हारी तबीयत तो ठीक हैं?'

गधा आंखें बंद करके मस्त स्वर में बोला 'मेरा दिल गाने का कर रहा हैं। अच्छा भोजन करने के बाद गाना चाहिए। सोच रहा हूं कि ढैंचू राग गाऊं।'

गीदड़ ने तुरंत चेतावनी दी 'न-न, ऐसा न करना गधे भाई। गाने-वाने का चक्कर मत चलाओ। यह मत भूलो कि हम दोनों यहां चोरी कर रहे हैं। मुसीबत को न्यौता मत दो।'

गधे ने टेढी नजर से गीदड़ को देखा और बोला 'गीदड़ भाई, तुम जंगली के जंगली रहे। संगीत के बारे में तुम क्या जानो?'

गीदड़ ने हाथ जोडे 'मैं संगीत के बारे में कुछ नहीं जानता। केवल अपनी जान बचाना जानता हूं। तुम अपना बेसुरा राग अलापने की ज़िद छोडो, उसी में हम दोनों की भलाई है।'

गधे ने गीदड़ की बात का बुरा मानकर हवा में दुलत्ती चलाई और शिकायत करने लगा 'तुमने मेरे राग को बेसुरा कहकर मेरी बेइज्जती की है। हम गधे शुद्ध शास्त्रीय लय में रेंकते हैं। वह मूर्खों की समझ में नहीं आ सकता।'

गीदड़ बोला 'गधे भाई, मैं मूर्ख जंगली सही, पर एक मित्र के नाते मेरी सलाह मानो। अपना मुंह मत खोलो। बाग़ के चौकीदार जाग जाएंगे।'

गधा हंसा 'अरे मूर्ख गीदड़! मेरा राग सुनकर बाग़ के चौकीदार तो क्या, बाग़ का मालिक भी फूलों का हार लेकर आएगा और मेरे गले में डालेगा।'

गीदड़ ने चतुराई से काम लिया और हाथ जोडकर बोला 'गधे भाई, मुझे अपनी ग़लती का अहसास हो गया हैं। तुम महान गायक हो। मैं मूर्ख गीदड़ भी तुम्हारे गले में डालने के लिए फूलों की माला लाना चाहता हूं। मेरे जाने के दस मिनट बाद ही तुम गाना शुरू करना ताकि मैं गायन समाप्त होने तक फूल मालाएं लेकर लौट सकूं।'

गधे ने गर्व से सहमति में सिर हिलाया। गीदड़ वहां से सीधा जंगल की ओर भाग गया। गधे ने उसके जाने के कुछ समय बाद मस्त होकर रेंकना शुरू किया। उसके रेंकने की आवाज़ सुनते ही बाग़ के चौकीदार जाग गए और उसी ओर लट्ठ लेकर दौडे, जिधर से रेंकने की आवाज़ आ रही थी। वहां पहुंचते ही गधे को देखकर चौकीदार बोला "यही है वह दुष्ट गधा, जो रोज हमारी सब्जियां चुरा कर खा रहा था। मारो मारो पीटो घेर लो, जाने ना पाए'

बस सारे चौकीदार डंडों के साथ गधे पर पिल पडे। कुछ ही देर में गधा पिट-पिटकर अधमरा गिर पडा।

ब्राह्मण का सपना

एक नगर में कोई कंजूस ब्राह्मण रहता था। उसने भिक्षा से प्राप्त सत्तुओं में से थोड़े से खाकर शेष से एक घड़ा भर लिया था। उस घड़े को उसने रस्सी से बांधकर खूंटी पर लटका दिया और उसके नीचे पास ही खटिया डालकर उसपर लेटे-लेटे विचित्र सपने लेने लगा, और कल्पना के हवाई घोड़े दौड़ाने लगा।

उसने सोचा कि जब देश में अकाल पड़ेगा तो इन सत्तुओं का मूल्य १०० रुपये हो जायगा। उन सौ रुपयों से मैं दो बकरियां लूँगा। छः महीने में उन दो बकरियों से कई बकरियें बन जायंगी। उन्हें बेचकर एक गाय लूंगा। गौओं के बाद भैंसे लूंगा और फिर घोड़े ले लूंगा ।

घोड़ों को महंगे दामों में बेचकर मेरे पास बहुत सा सोना हो जायगा। सोना बेचकर मैं बहुत बडा़ घर बनाऊँगा। मेरी सम्पत्ति को देखकर कोई भी ब्राह्मण अपनी सुरुपवती कन्या का विवाह मुझसे कर देगा । वह मेरी पत्नी बनेगी। उससे जो पुत्र होगा उसका नाम मैं सोमशर्मा रखूंगा ।

जब वह घुटनों के बल चलना सीख जायेगा तो मैं पुस्तक लेकर घुड़शाला के पीछे की दीवार पर बैठा हुआ उसकी बाल-लीलायें देखूंगा । उसके बाद सोमशर्मा मुझे देखकर मां की गोद से उतरेगा और मेरी ओर आयेगा तो मैं उसकी मां को क्रोध से कहूँगा:--"अपने बच्चे को संभाल ।"

वह गृह-कार्य में व्यग्र होगी, इसलिये मेरा वचन न सुन सकेगी। तब मैं उठकर उसे पैर की ठोकर से मारुंगा। यह सोचते ही उसका पैर ठोकर मारने के लिये ऊपर उठा। वह ठोकर सत्तु-भरे घड़े को लगी। घड़ा चकनाचूर हो गया। कंजूस ब्राह्मण के स्वप्न भी साथ ही चकनाचूर हो गये ।

दो सिर वाला जुलाहा

एक बार मन्थरक नाम के जुलाहे के सब उपकरण, जो कपड़ा बुनने के काम आते थे, टूट गये। उपकरणों को फिर बनाने के लिये लकड़ी की जरुरत थी। लकड़ी काटने की कुल्हाड़ी लेकर वह समुद्रतट पर स्थित वन की ओर चल दिया। समुद्र के किनारे पहुँचकर उसने एक वृक्ष देखा और सोचा कि इसकी लकड़ी से उसके सब उपकरण बन जायेंगे। यह सोच कर वृक्ष के तने में वह कुल्हाडी़ मारने को ही था कि वृक्ष की शाखा पर बैठे हुए एक देव ने उसे कहा:-"मैं इस वृक्ष पर आनन्द से रहता हूँ, और समुद्र की शीतल हवा का आनन्द लेता हूँ। तुम्हें इस वृक्ष को काटना उचित नहीं। दूसरे के सुख को छी़नने वाला कभी सुखी नहीं होता ।"

जुलाहे ने कहा :-"मैं भी लाचार हूँ। लकड़ी के बिना मेरे उपकरण नहीं बनेंगे, कपड़ा नही बुना जायगा, जिससे मेरे कुटुम्बी भूखे मर जायेंगे। इसलिये अच्छा़ यही है कि तुम किसी और वृक्ष का आश्रय लो, मैं इस वृक्ष की शाखायें काटने को विवश हूँ।"

देव ने कहा:-"मन्थरक ! मैं तुम्हारे उत्तर से प्रसन्न हूँ। तुम कोई भी एक वर माँग लो, मैं उसे पूरा करुँगा, केवल इस वृक्ष को मत काटो।"

मन्थरक बोला:-"यदि यही बात है तो मुझे कुछ देर का अवकाश दो। मैं अभी घर जाकर अपनी पत्नी से और मित्र से सलाह करके तुम से वर मांगूंगा।"

देव ने कहा:--"ठीक है। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करुँगा।"

गाँव में पहुँचने के बाद मन्थरक की भेंट अपने एक मित्र नाई से हो गई। उसने उससे पूछा़:-"मित्र ! एक देव मुझे वरदान दे रहा है, मैं तुझ से पूछ़ने आया हूँ कि कौन सा वरदान माँगा जाए।"

नाई ने कहा:-"यदि ऐसा ही है तो राज्य मांग ले। मैं तेरा मन्त्री बन जाऊंगा, हम सुख से रहेंगे।"

तब, मन्थरक ने अपनी पत्नी से सलाह लेने के बाद वरदान का निश्चय करने की बात नाई से कही। नाई ने स्त्रियों के साथ ऐसी मन्त्रणा करना नीति-विरुद्ध बतलाया।

मन्थरक ने फिर भी पत्नी से सलाह किये बिना कुछ़ भी न करने का विचार प्रकट किया। घर पहुँचकर वह पत्नी से बोला:-- "आज मुझे एक देव मिला है। वह एक वरदान देने को उद्यत है। नाई की सलाह है कि राज्य मांग लिया जाय। तू बता कि कौन सी चीज़ मांगी जाये।"

पत्नी ने उत्तर दिया:--"राज्य-शासन का काम बहुत कष्ट-प्रद है। सन्धि-विग्रह आदि से ही राजा को अवकाश नहीं मिलता। राजमुकुट प्रायः कांटों का ताज होता है। ऐसे राज्य से क्या अभिप्राय जो सुख न दे।"

मन्थरक ने कहा :--"प्रिय ! तुम्हारी बात सच है, राजा राम को और राजा नल को भी राज्य-प्राप्ति के बाद कोई सुख नहीं मिला था। हमें भी कैसे मिल सकता है ? किन्तु प्रश्न यह है कि राज्य न मांग जाय तो क्या मांगा जाये।"

मन्थरक-पत्नी ने उत्तर दिया:--"तुम अकेले दो हाथों से जितना कपड़ा बुनते हो, उससे भी हमारा व्यय पूरा हो जाता है। यदि तुम्हारे हाथ दो की जगह चार हों और सिर भी एक की जगह दो हों तो कितना अच्छा़ हो। तब हमारे पास आज की अपेक्षा दुगना कपड़ा हो जायगा । इससे समाज में हमारा मान बढ़ेगा ।"

मन्थरक को पत्नी की बात जच गई । समुद्रतट पर जाकर वह देव से बोला:--"यदि आप वर देना ही चाहते हैं तो यह वर दो कि मैं चार हाथ और दो सिर वाला हो जाऊँ ।"

मन्थरक के कहने के साथ ही उसका मनोरथ पूरा हो गया। उसके दो सिर और चार हाथ हो गये। किन्तु इस बदली हालत में जब वह गाँव में आया तो लोगों ने उसे राक्षस समझ लिया, और राक्षस-राक्षस कहकर उसको मार दिया।

हमेशा प्रकृति के अनुकूल ही चलना चाहिए।

वानरराज का बदला

एक नगर के राजा चन्द्र के पुत्रों को बन्दरों से खेलने का व्यसन था। बन्दरों का सरदार भी बड़ा चतुर था। वह सब बन्दरों को नीतिशास्त्र पढ़ाया करता था। सब बन्दर उसकी आज्ञा का पालन करते थे। राजपुत्र भी उन बन्दरों के सरदार वानरराज को बहुत मानते थे।

उसी नगर के राजगृह में छोटे राजपुत्र के वाहन के लिये कई मेढे भी थे। उन में से एक मेढा बहुत लोभी था। वह जब जी चाहे तब रसोई में घुस कर सब कुछ खा लेता था। रसोइये उसे लकड़ी से मार कर बहार निकाल देते थे ।

वानरराज ने जब यह कलह देखा तो वह चिन्तित हो गया। उसने सोचा 'यह कलह किसी दिन सारे बन्दरसमाज के नाश का कारण हो जायगा कारण यह कि जिस दिन कोई नौकर इस मेढ़े को जलती लकड़ी से मारेगा, उसी दिन यह मेढा घुड़साल में घुस कर आग लगा देगा। इससे कई घोड़े जल जायंगे। जलन के घावों को भरने के लिये बन्दरों की चर्बी की मांग पैदा होगी। तब, हम सब मारे जायंगे ।'

इतनी दूर की बात सोचने के बाद उसने बन्दरों को सलाह दी कि वे अभी से राजगृह का त्याग कर दें। किन्तु उस समय बन्दरों ने उसकी बात को नहीं सुना। राजगृह में उन्हें मीठे-मीठे फल मिलते थे। उन्हें छोड़ कर वे

कैसे जाते ! उन्होंने वानरराज से कहा कि "बुढ़ापे के कारण तुम्हारी बुद्धि मन्द पड़ गई है। हम राजपुत्र के प्रेम-व्यवहार और अमृतसमान मीठे फलों को छोड़कर जंगल में नहीं जायंगे।"

वानरराज ने आंखों में आंसू भर कर कहा :--"मूर्खो ! तुम इस लोभ का परिणाम नहीं जानते। यह सुख तुम्हें बहुत महंगा पड़ेगा ।" यह कहकर वानरराज स्वयं राजगृह छो़ड़्कर वन में चला गया।

उसके जाने के बाद एक दिन वही बात हो गई जिस से वानरराज ने वानरों को सावधान किया था। एक लोभी मेढा जब रसोई में गया तो नौकर ने जलती लकड़ी उस पर फैंकी। मेढे के बाल जलने लगे। वहाँ से भाग कर वह अश्वशाला में घुस गया। उसकी चिनगारियों से अश्वशाला भी जल गई । कुछ घोड़े आग से जल कर वहीं मर गये। कुछ रस्सी तुड़ा कर शाला से भाग गये ।

तब, राजा ने पशुचिकित्सा में कुशल वैद्यों को बुलाया और उन्हें आग से जले घोड़ों की चिकित्सा करने के लिये कहा। वैद्यों ने आयुर्वेदशास्त्र देख कर सलाह दी कि जले घावों पर बन्दरों की चर्बी की मरहम बना कर लगाई जाये। राजा ने मरहम बनाने के लिये सब बन्दरों को मारने की आज्ञा दी। सिपाहियों ने सब बन्दरों को पकड़ कर लाठियों और पत्थरों से मार दिया ।

वानरराज को जब अपने वंश-क्षय का समाचार मिला तो वह बहुत दुःखी हुआ। उसके मन में राजा से बदला लेने की आग भड़क उठी। दिन-रात वह इसी चिन्ता में घुलने लगा। आखिर उसे एक वन मेम ऐसा तालाब मिला जिसके किनारे मनुष्यों के पदचिन्ह थे। उन चिन्हों से मालूम होता था कि इस तालाब में जितने मनुष्य गये, सब मर गये; कोई वापिस नहीं आया। वह समझ गया कि यहाँ अवश्य कोई नरभक्षी मगरमच्छ है। उसका पता लगाने के लिये उसने एक उपाय किया। कमल नाल लेकर उसका एक सिरा उसने तालाब में डाला और दूसरे सिरे को मुख में लगा

कर पानी पीना शुरु कर दिया।

थोड़ी देर में उसके सामने ही तालाब में से एक कंठहार धारण किये हुए मगरमच्छ निकला । उसने कहा:--"इस तालाब में पानी पीने के लिये आ कर कोई वापिस नहीं गया, तूने कमल नाल द्वारा पानी पीने का उपाय करके विलक्षण बुद्धि का परिचय दिया है । मैं तेरी प्रतिभा पर प्रसन्न हूँ । तू जो वर मांगेगा, मैं दूंगा । कोई सा एक वर मांग ले।"

वानरराज ने पूछा :-"मगरराज ! तुम्हारी भक्षण-शक्ति कितनी है ?"

मगरराज बोला :-"जल में मैं सैंकड़ों, सहस्त्रों पशु या मनुष्यों को खा सकता हूँ; भूमि पर एक गीडड़ भी नहीं।"

वानरराज:-"एक राजा से मेरा वैर है। यदि तुम यह कंठहार मुझे दे दो तो मैं उसके सारे परिवार को तालाब में लाकर तुम्हारा भोजन बना सकता हूँ।"

मगरराज ने कंठहार दे दिया। वानरराज कंठहार पहिनकर राजा के महल में चला गया। उस कंठहार की चमक-दमक से सारा राजमहल जगमगा उठा। राजा ने जब वह कंठहार देखा तो पूछा:--"वानरराज ! यह कंठहार तुम्हें कहाँ मिला ?"

वानरराज:-"राजन् ! यहाँ से दूर वन में एक तालाब है। वहाँ रविवार के दिन सुबह के समय जो गोता लगायगा उसे वह कंठहार मिल जायगा।"

राजा ने इच्छा प्रगट की कि वह भी समस्त परिवार तथा दरबारियों समेत उस तालाब में जाकर स्नान करेगा, जिस से सब को एक-एक कंठहार की प्राप्ति हो जायगी।"

निश्चित दिन राजा समेत सभी लोग वानरराज के साथ तालाब पर पहुँच गये। किसी को यह न सूझा कि ऐसा कभी संभव नहीं हो सकता। तृष्णा

सबको अन्धा बना देती है। सैंकड़ों वाला हज़ारों चाहता है; हज़ारों वाला लाखों की तृष्णा रखता है; लखपति करोड़पति बनने की धुन में लगा रहता है। मनुष्य का शरीर जराजीर्ण हो जाता है, लेकिन तृष्णा सदा जवान रहती है। राजा की तृष्णा भी उसे उसके काल के मुख तक ले आई ।

सुबह होने पर सब लोग जलाशय में प्रवेश करने को तैयार हुए। वानरराज ने राजा से कहा:--"आप थोड़ा ठहर जायं, पहले और लोगों को कंठहार लेने दीजिये। आप मेरे साथ जलाशय में प्रवेश कीजियेगा । हम ऐसे स्थान पर प्रवेश करेंगे जहां सबसे अधिक कंठहार मिलेंगे।"

जितने लोग जलाशय में गये, सब डूब गये; कोई ऊपर न आया। उन्हें देरी होती देख राजा ने चिन्तित होकर वानरराज की ओर देखा। वानरराज तुरन्त वृक्ष की ऊँची शाखा पर चढ़कर बोला:-"महाराज ! तुम्हारे सब बन्धु-बान्धवों को जलाशय में बैठे राक्षस ने खा लिया है। तुम ने मेरे कुल का नाश किया था; मैंने तुम्हारा कुल नष्ट कर दिया। मुझे बदला लेना था , ले लिया। जाओ, राजमहल को वापिस चले जाओ।"

राजा क्रोध से पागल हो रहा था, किन्तु अब कोई उपाय नहीं था। वानरराज ने सामान्य नीति का पालन किया था। हिंसा का उत्तर प्रतिहिंसा से और दुष्टता का उत्तर दुष्टता से देना ही व्यावहारिक नीति है ।

राजा के वापिस जाने के बाद मगरराज तालाब से निकला । उसने वानरराज की बुद्धिमत्ता की बहुत प्रशंसा की।

राक्षस का भय

एक नगर में भद्रसेन नाम का राजा रहता था। उसकी कन्या रत्नवती बहुत रुपवती थी। उसे हर समय यही डर रहता था कि कोई राक्षस उसका अपहरण न करले । उसके महल के चारों ओर पहरा रहता था, फिर भी

वह सदा डर से कांपती रहती थी । रात के समय उसका डर और भी बढ़ जाता था ।

एक रात एक राक्षस पहरेदारों की नज़र बचाकर रत्नवती के घर में घुस गया । घर के एक अंधेरे कोने में जब वह छिपा हुआ था तो उसने सुना कि रत्नवती अपनी एक सहेली से कह रही है "यह दुष्ट विकाल मुझे हर समय परेशान करता है, इसका कोई उपाय कर ।"

राजकुमारी के मुख से यह सुनकर राक्षस ने सोचा कि अवश्य ही विकाल नाम का कोई दूसरा राक्षस होगा, जिससे राजकुमारी इतनी डरती है । किसी तरह यह जानना चाहिये कि वह कैसा है ? कितना बलशाली है ? यह सोचकर वह घोड़े का रुप धारण करके अश्वशाला में जा छिपा ।

उसी रात कुछ देर बाद एक चोर उस राज-महल में आया । वह वहाँ घोड़ों की चोरी के लिए ही आया था। अश्वशाला में जा कर उसने घोड़ों की देखभाल की और अश्वरुपी राक्षस को ही सबसे सुन्दर घोड़ा देखकर वह उसकी पीठ पर चढ़ गया। अश्वरुपी राक्षस ने समझा कि अवश्य ही यह व्यक्ति ही विकाल राक्षस है और मुझे पहचान कर मेरी हत्या के लिए ही यह मेरी पीठ पर चढ़ा है। किन्तु अब कोई चारा नहीं था। उसके मुख में लगाम पड़ चुकी थी। चोर के हाथ में चाबुक थी। चाबुक लगते ही वह भाग खड़ा हुआ।

कुछ दूर जाकर चोर ने उसे ठहरने के लिए लगाम खींची, लेकिन घोड़ा भागता ही गया। उसका वेग कम होने के स्थान पर बढ़ता ही गया। तब, चोर के मन में शंका हुई, यह घोड़ा नहीं बल्कि घोड़े की सूरत में कोई राक्षस है, जो मुझे मारना चाहता है। किसी ऊबड़-खाबड़ जगह पर ले जाकर यह मुझे पटक देगा। मेरी हड्डी-पसली टूट जायेगी।

यह सोच ही रहा था कि सामने वटवृक्ष की एक शाखा आई। घोड़ा उसके नीचे से गुजरा। चोर ने घोड़े से बचने का उपाय देखकर शाखा को दोनों

हाथों से पकड़ लिया। घोड़ा नीचे से गुज़र गया, चोर वृक्ष की शाखा से लटक कर बच गया।

उसी वृक्ष पर अश्वरुपी राक्षस का एक मित्र बन्दर रहता था। उसने डर से भागते हुये अश्वरुपी राक्षस को बुलाकर कहा:--

"मित्र ! डरते क्यों हो ? यह कोई राक्षस नहीं, बल्कि मामूली मनुष्य है। तुम चाहो तो इसे एक क्षण में खाकर हज़म कर लो।"

चोर को बन्दर पर बड़ा क्रोध आ रहा था। बन्दर उससे दूर ऊँची शाखा पर बैठा हुआ था। किन्तु उसकी लम्बी पूंछ चोर के मुख के सामने ही लटक रही थी। चोर ने क्रोधवश उसकी पूंछ को अपने दांतों में भींच कर चबाना शुरु कर दिया। बन्दर को पीड़ा तो बहुत हुई लेकिन मित्र राक्षस के सामने चोर की शक्ति को कम बताने के लिये वह वहाँ बैठा ही रहा। फिर भी, उसके चेहरे पर पीड़ा की छाया साफ नजर आ रही थी।

उसे देखकर राक्षस ने कहा - "मित्र ! चाहे तुम कुछ ही कहो, किन्तु तुम्हारा चेहरा कह रहा है कि तुम विकाल राक्षस के पंजे में आ गये हो ।"

यह कह कर वह भाग गया।

दो सिर वाला पक्षी

एक तालाब में भारण्ड नाम का एक विचित्र पक्षी रहता था। इसके मुख दो थे, किन्तु पेट एक ही था । एक दिन समुद्र के किनारे घूमते हुए उसे एक अमृत समान मधुर फल मिला। यह फल समुद्र की लहरों ने किनारे पर फैंक दिया था। उसे खाते हुए एक मुख बोला:--"ओः, कितना मीठा है यह फल ! आज तक मैंने अनेक फल खाये, लेकिन इतना स्वाद कोई नहीं था। न जाने किस अमृत बेल का यह फल है।"

दूसरा मुख उससे वंचित रह गया था। उसने भी जब उसकी महिमा सुनी तो पहले मुख से कहा:-"मुझे भी थोड़ा सा चखने को देदे ।"

पहला मुख हँसकर बोला:-"तुझे क्या करना है ? हमारा पेट तो एक ही है, उसमें वह चला ही गया है । तृप्ति तो हो ही गई है।"

यह कहने के बाद उसने शेष फल अपनी प्रिया को दे दिया । उसे खाकर उसकी प्रेयसी बहुत प्रसन्न हुई ।

दूसरा मुख उसी दिन से विरक्त हो गया और इस तिरस्कार का बदला लेने के उपाय सोचने लगा ।

अन्त में, एक दिन उसे एक उपाय सूझ गया। वह कहीं से एक विषफल ले आया। प्रथम मुख को दिखाते हुए उसने कहा:-"देख ! यह विषफल मुझे मिला है। मैं इसे खाने लगा हूँ।"

प्रथम मुख ने रोकते हुए आग्रह किया :-"मूर्ख ! ऐसा मत कर, इसके खाने से हम दोनों मर जायंगे।"

द्वितीय मुख ने प्रथम मुख के निषेध करते-करते, अपने अपमान का बदला लेने के लिये विषफल खा लिया। परिणाम यह हुआ कि दोनों मुखों वाला पक्षी मर गया ।

सच ही कहा गया है कि संसार में कुछ काम ऐसे हैं, जो एकाकी नहीं करने चाहियें । अकेले स्वाद भोजन नहीं खाना चाहिये, सोने वालों के बीच अकेले जागना ठीक नहीं, मार्ग पर अकेले चलना संकटापन्न है; जटिल विषयों पर अकेले सोचना नहीं चाहिये।

इतिश्री पंचतंत्र कथा संग्रह